मान मन्दिर बरसाना

मासिक पत्रिका, नवम्बर २०२२, वर्ष ०६, अंक १०

साध्वी मुरलिका जी अमेरिका में

(कथा-कीर्तन द्वारा हरिनाम प्रचार)

अनुक्रमणिका

विषय- सूची — पृष्ठ- संख्या

१ श्री मान मन्दिर का होगा जीर्णोद्धार.....०५
२ 'गौमाता-मन्दिर' का सुनिर्माण सुनिश्चित.....०८
३ प्रयागराज में भी बनेगा 'मानमन्दिर'.....११
४ श्री यमुना जी के विभिन्न स्वरूप.....१६
५ गंगा से अधिक महिमान्वित 'यमुना'.....१८
६ श्रीब्रज-प्रेमिका 'यमुनाजी'.....२०
७ यमुनाराधक 'युगलसरकार'.....२२
८ श्रीगह्वरवननिष्ठ संत श्रीरणछोड़दासजी.....२४
९ श्रीरणछोड़दासजी के कृपापात्र 'किशोरीदासजी'....२९
१० निष्कामता में सच्ची संतुष्टि.....३३

|| राधे किशोरी दया करो ||

हमसे दीन न कोई जग में,
बान दया की तनक ढरो |
सदा ढरी दीनन पै श्यामा,
यह विश्वास जो मनहि खरो |
विषम विषयविष ज्वालमाल में,
विविध ताप तापनि जु जरो |
दीनन हित अवतरी जगत में,
दीनपालिनी हिय विचरो |
दास तुम्हारो आस और की,
हरो विमुख गति को झगरो |
कबहूँ तो करुणा करोगी श्यामा,
यही आस ते द्वार पर्‌यो |

— *पूज्यश्री बाबामहाराज कृत*

संरक्षक– **श्रीराधामानबिहारीलाल**

प्रकाशक – **राधाकान्त शास्त्री, मानमंदिर सेवा संस्थान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)**

mob. राधाकांत शास्त्री 9927338666
ब्रजकिशोरदास.....6396322922

(Website :www.maanmandir.org)

(E-mail :info@maanmandir.org)

परम पूज्यश्री रमेश बाबा महाराज जी द्वारा सम्पूर्ण भारत को आह्वान –
"मजदूर से राष्ट्रपति और झोंपड़ी से महल तक रहने वाला प्रत्येक भारतवासी विश्वकल्याण के लिए गौ-सेवा-यज्ञ में भाग ले |"

*** योजना ***

अपनी आय से १ रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन निकाले व मासिक, त्रेमासिक, अर्धवार्षिक अथवा वार्षिक रूप से इकट्ठा किया हुआ सेवा द्रव्य किसी विश्वसनीय गौ सेवा प्रकल्प को दान कर गौ-रक्षा कार्य में सहभागी बन अनंत पुण्य का लाभ लें | हिन्दू शास्त्रों में अंश मात्र गौ सेवा की भी बड़ी महिमा का वर्णन किया गया है |

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप प्रातःकालीन सत्संग का ८:०० से ९:०० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:३० से ७:३० बजे तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं |

विशेष:- इस पत्रिका को स्वयं पढ़ने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढ़ावें जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्-कृपा के पात्र बनें | हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है –

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ | जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि || (श्रीमद्भागवत३/७/४१)

अर्थ:- भगवत्तत्त्वके उपदेश द्वारा जीव को जन्म-मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है, समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं हो सकता |

प्रकाशकीय

ब्रजभूमि का प्रत्येक रजकण श्रीहरि का ही स्वरूप है, इसी आस्था से जिन महापुरुष ने अपनी आराधना की भूमि के रूप में ब्रजभूमि का ही आश्रय लिया और गत ७० वर्षों से "मरना तेरी गली में, जीना तेरी गली में" – इस भावराशि को संजोये, जो अखण्ड ब्रजवास करते हुए श्रीमान मन्दिर गह्वरवन, बरसाना में विराजते हैं, उन महापुरुष पद्मश्री श्रीरमेश बाबा महाराजजी की कृपा प्रेरणा से करोड़ों श्रद्धालु भक्त आज ब्रजधाम की परिक्रमा व ब्रजवास करने को आतुर रहते हैं, इसी का जागृतस्वरूप तब दृष्टिगोचर हुआ, जब अपार जनसैलाब इस वर्ष की ब्रजयात्रा में देश के कोने–कोने से उमड़ पड़ा | कहते हैं कि कोई यदि ब्रज में एक बार भी आ जाय अथवा उसकी याद करले या यहाँ मर ही जाए एवं कुछ भी नहीं हो तो किसी ब्रजवासी से जुड़ जाए तो इन सभी का निश्चित कल्याण हो जाता है | अपार प्रसन्नता हुई, जब मैंने देखा कि बीसों हजार यात्री धाम दर्शन व ब्रज परिक्रमार्थ आये हैं | सब कुछ अच्छा चल रहा था परन्तु दैव विपरीत चल रहा था, उसे कुछ और ही मंजूर था | भयंकर वर्षा ने सबकी भावनाओं पर कुठाराघात कर दिया | इतनी वर्षा हुई कि ब्रज में इतने भक्तों को रहने के लिए टैन्ट लगाने का स्थान नहीं मिला | मान मन्दिर निवासी भी विवश थे, फिर भी वाहनों से अधिकांश भक्तों को चार दिवस में यात्रा करा दी गयी और बाबा की परम्परा निर्वहन हेतु छोटी यात्रा का भी सञ्चालन १८ अक्टूबर से किया गया | इस सबके कहने के पीछे यही मन्तव्य है कि महापुरुष की भावना को कोई शक्ति बाधित नहीं कर सकती | श्रीबाबा महाराज ने यात्रा के माध्यम से अथवा प्रभात फेरी सञ्चालन व नाम प्रचार से लोक–कल्याण हेतु अपने को समर्पित कर रखा है | यात्रा ब्रजवासियों के लिए भी वरदान है | जिस–जिस गाँव से यात्रा निकलती है, वहाँ का वातावरण राधा–कृष्ण मय बन जाता है | संकीर्तन की मधुर ध्वनियों के मध्य थिरकती हुई मानगढ़ की बालायें भाव–विभोर हो सभी को नाम संकीर्तन से जुड़ने को विवश कर देती हैं |

मान मन्दिर की यह अद्भुत पहल है, जिसके माध्यम से जीव अपने आराध्य से मिलने को आतुर हो जाता है और एक दिन वह अवश्य ही अपने इष्ट को प्राप्त कर ही लेगा | जो भक्ति की जाती है, वह अमोघ होती है, कभी नष्ट नहीं होती |

प्रबन्धक

राधाकान्त शास्त्री

श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

श्री मान मन्दिर का होगा जीर्णोद्धार

वृषभानुनन्दिनी श्रीराधारानी की क्रीड़ाभूमि श्रीबरसाना धाम में ब्रह्माचल पर्वत के चार शिखरों में से एक शिखर पर स्थित है मानगढ़ अथवा मानमन्दिर । श्रीराधामाधव की प्रेमरसलीला परम विशुद्ध एवं मानवीय मन–बुद्धि के प्राकृत चिन्तन से पूर्णतया रहित दिव्यातिदिव्य है । उनका चिन्मय लीला विहार प्राकृत स्त्री–पुरुष के विहार की तरह कामना कलुषित नहीं है । परम रसिक संत श्रीभगवत रसिकजी के अनुसार –

इनके मल मैथुन कछु नाहीं ।
दिव्य देह क्रीडत वन माहीं ।।

श्रीराधामाधव का शरीर दिव्य चिन्मय है और इनके विशुद्ध प्रेमविलास में प्राकृत स्त्री–पुरुष की भाँति मलिन कामक्रीड़ा का लेशमात्र भी स्पर्श नहीं है, उनके प्रेम में स्वसुखकामना की गन्ध भी नहीं है । श्रीराधारानी जो कुछ भी सोचती अथवा क्रियाकलाप करती हैं, वह अपने सुख की कामना से विहीन एकमात्र प्रियतम श्यामसुन्दर के सुख की ही अभिलाषा से करती हैं, इसी प्रकार श्यामसुन्दर भी जो कुछ मनोरथ करते अथवा क्रिया करते हैं, उसका लक्ष्य अपने सुख की कामना से पूर्णतया रहित, एकमात्र अपनी प्राणप्रिया श्रीराधिकारानी को ही सुख पहुँचाना होता है । ऐसे ही विशुद्ध प्रेम विलास की स्थली है मानगढ़, जहाँ मानिनी श्रीप्रियाजी ने अपने प्रेमास्पद श्रीश्यामसुन्दर के ही सुख की आकांक्षा से कठोर मान की लीला की थी और अपनी इन मानवती प्रिया को इसी पावन स्थली पर श्रीमानबिहारीलाल ने मनाया था । श्रीराधामाधव ने आज से साढ़े पाँच हजार वर्ष पूर्व द्वापरकाल में अपने गोलोक धाम से अवतरित होकर भूलोक पर स्थित त्रिलोक वन्दनीया इस ब्रज–वसुन्धरा में विशुद्ध प्रेम की लोकातीत लीलायें की । श्रीबरसाना धाम उनके दिव्यातिदिव्य प्रेमविहार का केन्द्रबिन्दु है । केवल साढ़े पाँच हजार वर्ष पूर्व ही नहीं अपितु वर्तमानकाल में भी प्रिया–प्रियतम की विशुद्ध प्रेममयी लीलायें यहाँ सदैव होती रहती हैं । इस तरह देखा जाए तो बरसाना धाम, यहाँ का ब्रह्माचल पर्वत तथा इस पर स्थित 'मानगढ़' पाँच हजार वर्ष पूर्व से अस्तित्व में है । पाँच हजार वर्ष से स्थापित मानिनी श्रीराधारानी के मानगढ़ का मन्दिर भी अति प्राचीन है । सन् १९५३ में अपनी जन्मभूमि तीर्थराज प्रयाग से परम ब्रजनिष्ठ संत श्रीरमेशबाबामहाराजजी जब बरसाना में पधारे तो उन्होंने मानिनी के इस मानभवन को ही अपनी आराधना और अखण्ड ब्रजवास हेतु सबसे उपयुक्त स्थान समझकर यहाँ आश्रय ग्रहण किया । उस समय मानमन्दिर चोर–डाकुओं, सर्पों और प्रेतात्माओं का भी निवास स्थान बनकर एक वीरान जीर्ण–शीर्ण खण्डहर के रूप में ब्रजवासियों द्वारा उपेक्षित और आराधना शून्य भयावह स्थल था । जब श्रीबाबामहाराज ने यहाँ रहना आरम्भ किया तो अपने संकीर्तन–आराधना के द्वारा उन्होंने इस स्थान को पुनः अपने दिव्यातिदिव्य रूप में स्थापित कर दिया परन्तु यह मन्दिर अत्यधिक प्राचीन और जीर्ण–शीर्ण होने के कारण अपने नवीनीकरण की माँग कर रहा था । लगभग ७० वर्षों से श्रीबाबामहाराज यहाँ निवास कर रहे हैं । कई बार इस मन्दिर के जीर्णोद्धार की माँग उठी । एक बार तो भारतवर्ष के एक प्रसिद्ध उद्योगपति ने श्रीबाबा के समक्ष प्रस्तुत होकर स्वयं ही मानमन्दिर का जीर्णोद्धार कराकर नवीन मन्दिर के निर्माण का प्रस्ताव रखा था परन्तु वह व्यक्ति धन की बहुलता से दुर्मदान्ध था । महापुरुषों का सर्वप्रथम कार्य तो जीव के मान–मद का नाश करके उसका कल्याण करना ही होता है, अतः धन के नशे में चूर उस उद्योगपति के गर्व भरे वचन सुनकर परम निष्किंचन संत श्रीबाबामहाराज ने उससे स्पष्ट कह दिया – 'अभिमान के विष से प्रदूषित दुर्गन्धपूर्ण तुम्हारे धन पर तो मान मन्दिर का कुत्ता भी नहीं थूकेगा, मिथ्या मान–विनाशक मानबिहारीलाल को किसी नवीन भव्य मन्दिर की

आवश्यकता नहीं है, वे एक झोंपड़ी में रहें, इसी में उनकी शोभा है।' उस अभिमानी उद्योगपति को ऐसे उत्तर की आशा नहीं थी क्योंकि उसके सामने मन्दिर निर्माण की याचना लेकर तो देश के असंख्य विरक्त मठाधीश पीछे–पीछे घूमा करते थे और वह भारत में अनेकों मन्दिरों का निर्माण कर चुका था। श्रीबाबा के ऐसे निर्भीक वचन से पता पड़ता है कि वे आज तक किसी धनी व्यक्ति, भौतिक रूप से समाज में अत्यधिक प्रतिष्ठित व्यक्तियों के समक्ष कभी नतमस्तक नहीं हुए और न ही ब्रज के किसी कार्य अथवा मानमन्दिर के नवनिर्माण हेतु कभी किसी से किसी प्रकार की याचना की। इस घटना के कई वर्षों पश्चात् भी मुम्बई से इस्कॉन (अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्ण भावनामृत संघ) के श्रद्धालु भक्तों ने भी बिना कहे ही मानमन्दिर के जीर्णोद्धार का संकल्प किया और इसके नवनिर्माण के लिए उन्होंने स्वयं ही धन का संग्रह किया और नवीन मान मन्दिर का नक्शा व उसका नया डिजाइन तैयार करके वे लोग मानमन्दिर पर आये तथा श्रीबाबा को अपनी योजना से अवगत किया। श्रीबाबा ने उनके इस कार्य की भरपूर सराहना की परन्तु मन्दिर–निर्माण की इस योजना से वे सहमत नहीं हुए। पूज्य महाराजश्री ने कहा कि मैं चाहता हूँ कि भारतवासियों व विशेषकर ब्रज के जन–जन के हृदय में मन्दिर का निर्माण किया जाए, परन्तु इसके लिए ईंट–पत्थर का बना मन्दिर नहीं अपितु भावराज्य के अर्थात् भक्तिमय मन्दिर का निर्माण हो और इसके लिए नाम–कीर्तन के देशव्यापी एवं विस्तृत प्रचार की आवश्यकता है, अतः मेरा यही मत है कि मन्दिर के नव निर्माण की अपेक्षा धन का सदुपयोग ब्रज व देश में भक्ति के लक्ष्य से जनजागृति अभियान के परम पुनीत कार्य में किया जाए। श्रीबाबा के इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए उस समय भी मानमन्दिर के नव निर्माण के इस कार्यक्रम को स्थगित कर दिया गया। उस समय श्रीबाबा महाराज के नेतृत्त्व में सम्पूर्ण ब्रजमंडल में बड़े ही जोरशोर के साथ प्रभात फेरी कार्यक्रम के माध्यम से संकीर्तन आन्दोलन का प्रचार किया जा रहा था और मान मन्दिर के संत तथा यहाँ की साध्वियाँ श्रीबाबा के आदेश से इस आन्दोलन के चहुँमुखी विस्तार के अभियान में अत्यधिक उत्साह के साथ पूर्णरूप से समर्पित होकर जुटे थे। इसके लिए संत व साध्वियाँ तो अनेकों गाड़ियों के द्वारा प्रचार कर ही रहे थे, इसके अतिरिक्त ब्रज व भारत के कई प्रान्तों के भक्तों को भी अपने–अपने क्षेत्र में नाम–कीर्तन के प्रचार हेतु मान मन्दिर सेवा संस्थान के द्वारा निःशुल्क वाहन प्रदान किये गये थे, यहाँ तक कि उनके डीजल और रखरखाव का प्रबन्ध भी इस संस्था द्वारा किया गया था। ब्रज व ब्रज के बाह्य प्रदेशों में भगवन्नाम–संकीर्तन के बहुमुखी विस्तार हेतु हजारों माइक और ढोलक भी वहाँ के भक्तों को निःशुल्क वितरित किये गये। श्रीबाबामहाराज के इस परमोदार कल्याणकारी आन्दोलन का यह परिणाम हुआ कि आज भारत के पैंतालीस हजार गाँवों में प्रभात फेरी कार्यक्रम के माध्यम से नगर–संकीर्तन का प्रचार किया गया है। श्रीबाबा ने इस अभियान का सूत्रपात भी नगरों में नहीं वरन् भारत के गाँवों में किया क्योंकि स्वयं राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने भी कहा था कि हिन्दुस्तान नगरों में नहीं बल्कि गाँवों में निवास करता है। आज भी भारतवर्ष की बहुसंख्यक प्रजा गाँवों में ही निवास करती है। गाँवों में निर्धनता और शहरी सुख–सुविधाओं का अभाव होने के कारण भारत के बड़े–बड़े प्रचारक और कथावाचक प्रायः गाँवों की उपेक्षा करके नगरों में ही अपने कार्यक्रम को विस्तार देते हैं; इसके कारण ग्रामीण श्रद्धालु जनता भक्ति विषयक कल्याणकारी कार्यक्रमों से वंचित ही रह जाती है। अतः श्रीबाबामहाराज के द्वारा उस समय मानमन्दिर के नव निर्माण कार्यक्रम को स्थगित करना पड़ा। जब से बाबाश्री का ब्रज में आगमन हुआ तो उनके सामने ब्रज की लीलास्थलियाँ यथा ब्रज के वन, पर्वत, कुण्ड इत्यादि तेजी से नष्ट हो रहे थे; ब्रज के पर्वतों का तो व्यापक रूप से खनन हो रहा था। इस दुर्दशा को देखकर सर्वप्रथम श्रीबाबा ने ब्रज की इन नष्ट हो रही लीला स्थलियों के संरक्षण पर ही सम्पूर्ण ध्यान केन्द्रित करते हुए इन्हीं के जीर्णोद्धार का व्यापक अभियान आरम्भ कर

दिया। श्रीबाबा के ही अथक प्रयासों से ब्रज के अनेकों कुण्डों का जीर्णोद्धार हुआ, वनों का संरक्षण हुआ तथा पर्वतों के तीव्र गति से हो रहे खनन पर अंकुश लगा। इसके अतिरिक्त पूज्यश्री के ही प्रयास से यमुनाजी के निर्मल जल को हरियाणा प्रान्त के हथनी कुण्ड से ब्रज में लाने के लिए देश–व्यापी यमुना आन्दोलन का श्रीगणेश किया गया, जिसमें तीन बार दिल्ली तक हजारों ब्रजवासियों और देश के अन्य प्रान्तों के लोगों ने भी सहभागिता की। इन्हीं सब व्यापक और प्रमुख कार्यक्रमों के कारण ही आरम्भ में श्रीबाबा ने मानमन्दिर के नवनिर्माण पर ध्यान नहीं दिया परन्तु अब ब्रज से जुड़े इन अभियानों में बहुमुखी सफलता प्राप्त होने तथा बरसाना में गौवंश के संरक्षण हेतु श्रीमाताजी गौशाला के रूप में देश की सबसे बड़ी गौशाला की स्थापना के उपरान्त श्रीबाबा को प्रतीत हुआ कि अब मानमन्दिर का जीर्णोद्धार कर जनता जनार्दन की सेवा हेतु नवीन मन्दिर के निर्माण का उपयुक्त समय आ गया है तो श्रीबाबामहाराज ने अब इस सर्वमंगलमय कार्यक्रम की घोषणा कर दी है। नव मानमन्दिर के निर्माण–कार्यक्रम में इस संस्था के प्रबन्धक पूर्ण उत्साह के साथ प्रयत्नशील हैं। नये मानमन्दिर का नक्शा भी तैयार किया गया है और शीघ्र ही सुनवीन मानमन्दिर के निर्माण का कार्य भी आरम्भ हो जाएगा।

'गौमाता–मन्दिर' का सुनिर्माण सुनिश्चित

सन् २००७ में पूज्य महाराजश्री के द्वारा बरसाना में मानमन्दिर के निकट ही गौवंश के संरक्षण और संवर्द्धन के लिए चार–पाँच गायों के साथ श्रीमाताजी गौशाला की स्थापना की गई थी; उस समय उन्होंने मानमन्दिर के सदस्यों के समक्ष कहा था कि यदि आप लोग पूर्ण त्याग और ईमानदारी के साथ गौवंश के प्रति समर्पित भाव से सेवा करेंगे तो यह गौशाला भारत ही नहीं अपितु विश्व की सर्वाधिक महत्वपूर्ण गौशाला के रूप में प्रतिष्ठित हो जाएगी । उस समय मानमन्दिर के प्रबन्धकों ने पूज्य गुरुदेव की इस वाणी का अक्षरशः पालन किया और सन्त श्रीब्रजशरणजीमहाराज ने गौसेवा के इस परम पुनीत कार्य का उत्तरदायित्त्व अपने ऊपर लिया । सन्त श्रीब्रजशरणजी मूलतः पंजाब प्रान्त के निवासी हैं और वे सन् २००४ में बरसाना धाम में आ गये थे । सर्वप्रथम वे श्रीबाबा के द्वारा संचालित श्रीराधारानी ब्रजयात्रा के माध्यम से ही मान मन्दिर के सम्पर्क में आये । इस निःशुल्क ब्रजयात्रा और श्रीबाबा के चुम्बकीय व्यक्तित्व ने उनके मानस पटल पर ऐसा प्रभाव डाला कि माता–पिता की इकलौती संतान होने पर भी करोड़ों रुपये के अपने घरेलू व्यापारिक व्यवसाय को सहर्ष ही तिलांजलि दे दी तथा माता–पिता का भी त्याग करके पूर्ण उत्साह सहित वे श्रीबाबा के शरणागत होकर मानमन्दिर पर रहने लगे । बाबाश्री के सत्संग और ब्रजभूमि की सेवा हेतु आरम्भ किये गये उनके कार्यों ने श्रीब्रजशरणजी के हृदय पर अपनी अमिट छाप छोड़ी । जब श्रीबाबा के द्वारा ब्रज के दिव्य सरोवरों के जीर्णोद्धार कार्यक्रम का आरम्भ किया गया तो ब्रजशरणजी इसमें पूर्ण समर्पण भाव से जुट गये और सर्वप्रथम उन्होंने श्रीबाबा के नेतृत्त्व में बरसाना के वृषभानुसरोवर के जीर्णोद्धार में अत्यन्त उत्साह के साथ भाग लिया । श्रीबाबा की प्रेरणा से ब्रजशरणजी ने वृषभानुसरोवर के जलमहल के जीर्ण–शीर्ण भवन के जीर्णोद्धार के गुरुतर कार्य का उत्तरदायित्त्व अपने कन्धों पर लिया और अत्यधिक कर्मठता व पूर्ण कुशलता के साथ उन्होंने इस कार्य को सफलता के साथ सम्पादित किया । उन्हीं की ईमानदार सेवा–भावना का यह परिणाम है कि आज श्रीराधारानी के पिता श्रीवृषभानुजी के द्वारा निर्मित इस कुण्ड का खण्डहर हो चुका जलमहल पुनः अपने दिव्य रूप में शोभायमान है । वृषभानुकुण्ड के जीर्णोद्धार के पश्चात् श्रीब्रजशरणजी ने चिकसौली के दोहनीकुण्ड के घाटों का जीर्णोद्धार किया, डभारा गाँव के लुप्त हो चुके रत्नकुण्ड का जीर्णोद्धार किया, इनके अतिरिक्त भी उन्होंने ब्रज के अनेक कुण्डों का कुशलतापूर्वक जीर्णोद्धार कार्य किया और अन्त में जब श्रीमाताजी गौशाला की स्थापना हुई तो पूज्य बाबामहाराज ने गौवंश की सेवा के अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्य का उत्तरदायित्त्व भी उन्हीं को सौंप दिया । ब्रजशरणजीमहाराज इस कार्य का अत्यधिक कुशलता के साथ निर्वाह कर रहे हैं । आज उन्हीं के नेतृत्त्व में माताजी गौशाला में साठ हजार से भी अधिक गौवंश का संरक्षण और संवर्द्धन किया जा रहा है । सनातन धर्म के आर्ष ग्रन्थों में पृथ्वी को धारण करने वाले सात आधार स्तम्भों में गाय को प्रथम स्तम्भ बताया गया है –

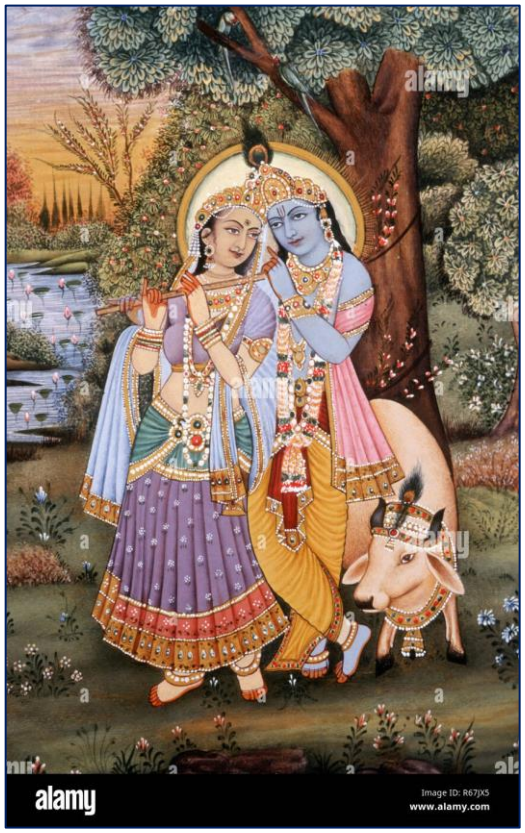

गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः ।
अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही ।।

(स्कन्दपुराण ४/२/९०)

इसी प्रकार शास्त्रों ने गाय को समस्त विश्व की माता भी बताया है – **"गावो विश्वस्य मातरः"**

ऋग्वेद में तो ब्रजभूमि के साथ गाय के सम्बन्ध को परिभाषित किया गया है –

"यत्र गावो भूरिश्रृंगाः अयासः" (ऋग्वेद 1/१५)

जहाँ गाय है, वहीं ब्रज है।

ब्रजभूमि के महानायक और परम गौसेवक गोपालजी तो गायों के बिना रह ही नहीं सकते, उनके बारे में अष्टछाप के संतों में श्रीछीतस्वामीजी ने लिखा है –

आगे गाय पाछे गाय इत गाय उत गाय।
गोविन्द को गायन में बसिवो ही भावै ॥

सनातनधर्म का समस्त धार्मिक साहित्य गौमाता के प्रशस्ति–गायन से भरा हुआ है। परन्तु कलिकाल का आगमन ही गौवंश पर अत्याचार के साथ हुआ। गौवंश की महिमा गान करने वाला और सम्पूर्ण विश्व में गौसेवा के आदर्श को स्थापित करने वाला भारतवर्ष आज दुनिया में सबसे बड़ा गौ–माँस का निर्यातक देश बन गया है। द्वापरयुग में गायों के ही लोक गोलोक धाम से अवतरित हुए श्रीराधामाधव ने गोपवंश में प्रकट होकर गायों का पालन–पोषण करके त्रिलोकी को गौसेवा का पाठ पढ़ाया। कलियुग में जब गौवंश का उत्तरोत्तर पतन हो रहा है, ऐसे भयावह आसुरी युग में भी सन्तों ने समय–समय पर भारतवर्ष में प्रकट होकर जनता को विश्वपूज्या गौमाता की सेवा के द्वारा उसे गौमाता की अद्भुत महिमा से परिचित कराया है। ऐसे ही दुर्लभ महापुरुषों में हैं परम ब्रजसेवक और आदर्श गौप्रेमी संत श्रीरमेशबाबाजीमहाराज, जिन्होंने श्रीराधारानी की क्रीड़ाभूमि बरसाना में माताजी गौशाला की स्थापना के द्वारा साठ हजार से भी अधिक गौवंश के पालन–पोषण का कुशल प्रबन्ध करके आधुनिकता की चकाचौंध से गौमाता की महिमा को विस्मृत करने वाले भारतीय जनमानस को पुनः गौमाता की अतुलनीय महिमा से अवगत कराया है। श्रीबाबामहाराज ने माताजी गौशाला के संचालक श्रीब्रजशरणजी से कह दिया है कि इस गौशाला में चाहे जितनी भी संख्या में गायें आयें, उन्हें लेने से मना मत करना और यहाँ तक कि गौवंश के अन्तर्गत बछड़ों, बैल–साँड़ों को भी रख लेना, उनकी उपेक्षा मत करना। पूज्य महाराजश्री की आज्ञा का पूर्ण पालन करते हुए श्रीब्रजशरणमहाराजजी कभी भी गौवंश को लेने से इन्कार नहीं करते हैं। इस गौशाला में आज तक जितनी भी गायें आती हैं, उनमें से अधिकांश गायें ऐसी हैं, जिन्हें वधिकों द्वारा बड़े–बड़े ट्रकों में क्रूरतापूर्वक रस्सी से बाँधकर देश के विभिन्न हिस्सों में स्थापित वधशालाओं में वध करने के लिए ले जाया जा रहा था। इन दुष्ट पिशाचों से गौवंश को मुक्त कराकर इन्हें माताजी गौशाला में लाकर पूर्ण संरक्षण प्रदान करते हुए अत्यन्त उदारतापूर्वक गौवंश का पालन–पोषण किया जा रहा है। माताजी गौशाला में बीमार गौवंश की चिकित्सा के लिए १५ करोड़ रुपये की लागत से देश का सबसे बड़ा गौ–चिकित्सालय स्थापित किया गया है। इस अस्पताल में मनुष्यों की ही भाँति बीमार गौवंश की अत्याधुनिक चिकित्सकीय यन्त्रों और सुविधाओं के साथ चिकित्सा की जाती है। इस गौशाला का गौवंश की सेवा हेतु प्रतिदिन का व्यय चालीस लाख रुपये है। बड़े ही आश्चर्य की बात है कि गौसेवा के उचित प्रबन्ध के लिए इस गौशाला में किसी से धन की याचना नहीं की जाती है। स्वेच्छानुसार जो गौप्रेमी श्रद्धालु दान करते हैं, उनके धन को गौसेवा हेतु स्वीकार किया जाता है। श्रीबाबामहाराज का संकल्प इस गौशाला में एक लाख गौवंश रखने का है और वह अति शीघ्र ही पूरा होने वाला है। भारत और दुनिया भर के लोगों को गौमाता की अद्भुत महिमा से परिचित कराने के लिए पूज्य श्रीबाबामहाराज ने एक अन्य महत्वपूर्ण योजना भी बनायी है और वह है गौशाला की भूमि पर स्थित पर्वत पर एक अत्यन्त विशाल 'गौमाता मन्दिर' की स्थापना। गौशाला की भूमि पर जो पर्वत है, उसका शास्त्रीय नाम है – 'रत्नगिरि पर्वत' किन्तु स्थानीय ब्रजवासी इसे 'मुड़ला पहाड़' के नाम से पुकारते हैं। मुड़ला पहाड़ कहने का एक कारण यह है कि इस पर्वत पर कोई वृक्षावली नहीं थी। लताओं–वृक्षों और वनस्पति शून्य होने के कारण ही

ब्रजवासी कहते थे कि यह पहाड़ तो मुंडे सिर वाला केश विहीन है। जैसे केश विहीन व्यक्ति को मुण्डा भी कहा जाता है, उसी प्रकार ब्रजवासी भी इस पर्वत को मुड़े सिर का अर्थात् मुड़ला पहाड़ कहने लगे। परन्तु वर्तमानकाल में श्रीबाबा की प्रेरणा से श्रीब्रजशरणजीमहाराज ने इस पर्वत को वृक्षारोपण कार्यक्रम के द्वारा हजारों की संख्या में वृक्षावली से सुशोभित कर दिया है। सघन वृक्षावली से सुशोभित होने के कारण अब इस पर्वत की शोभा दिन पर दिन वृद्धि को प्राप्त हो रही है। इसीलिए श्रीबाबामहाराज के मन में इस पर्वत पर दिव्य गौमाता के मन्दिर के निर्माण का संकल्प जागृत हो उठा। गौमाता मन्दिर के रूप में इस पर्वत पर अत्यधिक विशाल गौमाता की प्रतिमा स्थापित की जाएगी, यह प्रतिमा इतनी ऊँची होगी कि इसे बरसाना के अत्यधिक सुदूरवर्ती स्थानों से भी देखा जा सकेगा। भारतवर्ष में प्राचीनकाल से वर्तमानकाल तक एक से एक विशाल और भव्य मन्दिरों का निर्माण हुआ है और आज भी इनका क्रम जारी है। इन मन्दिरों में देव विग्रह की स्थापना की जाती है। ये मन्दिर किसी विशेष देवी–देवता की महिमा को उजागर करने के लिए स्थापित किये जाते हैं और मन्दिर के भीतर उनकी प्रतिमाओं की उपासना की जाती है। भारत में ऐसे अगणित भव्य मन्दिर हैं जैसे शिवजी की आराधना और उनकी महिमा को प्रचारित करने वाले शिव मन्दिर, देवी की उपासना के लिए समर्पित शक्तिपीठों और अन्य स्थलों में अनेकों विशाल देवी मन्दिरों की स्थापना की गयी है, कई देवी मन्दिर तो भारत के अनेकों पर्वतों पर स्थित हैं, जिनमें वैष्णो देवी का मन्दिर सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार वैष्णव–उपासना के अन्तर्गत भारत में भगवान् राम, श्रीकृष्ण और विष्णु मन्दिरों की स्थापना की गयी है, जिनमें तमिलनाडु का श्रीरंगनाथजी का मन्दिर भारत का सर्वाधिक विशाल मन्दिर है। ब्रजभूमि भगवान् श्रीकृष्ण के मन्दिरों एवं अयोध्या श्रीरामजी के मन्दिरों के लिए विश्व विख्यात है परन्तु भारत में आज तक एक भी ऐसे मन्दिर का निर्माण नहीं किया गया, जो गौमाता की उपासना और उनकी महिमा के लिए समर्पित हो। ब्रजभूमि गोपाल की भूमि है और भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्रजभूमि में ही प्रकट होकर गौसेवा के विलक्षण माहात्म्य को अपने द्वारा आचरित अनुपम गौसेवा के द्वारा विश्व के सामने प्रदर्शित किया। पाँच हजार वर्ष के पश्चात् अब पुनः गौप्रेमी श्रीराधामाधव की इस पावन धरा पर बरसाना धाम में माताजी गौशाला की स्थापना के माध्यम से श्रीबाबामहाराज ने विश्व को गौसेवा के अनन्त माहात्म्य से अवगत कराया है। गौसेवा के साथ ही 'गौमाता' की भगवान् की ही तरह अपने इष्ट के रूप में उपासना की जाए ताकि लोग गाय के अचिन्त्य महत्त्व को समझते हुए श्रद्धा के साथ उसकी आराधना भी कर सकें, इस लक्ष्य के साथ ही श्रीबाबामहाराज ने माताजी गौशाला के भूभाग में स्थित रत्नगिरि पर्वत पर गौमाता को समर्पित एक 'गौमाता मन्दिर' के निर्माण का कार्यक्रम बनाया है। इस पर्वत पर जो अत्यधिक विशाल गौमाता की प्रतिमा स्थापित की जाएगी, उसके पीछे एक कारण यह भी है कि स्कन्दपुराण में गाय को पृथ्वी को धारण करने वाले सात आधार स्तम्भों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रथम स्तम्भ बताया गया है। गाय के अस्तित्त्व से ही पृथ्वी का अस्तित्त्व भी जुड़ा है, यदि गाय का अस्तित्व समाप्त हो गया तो पृथ्वी का अस्तित्व भी खतरे में पड़ जायेगा, जैसा कि आजकल हो रहा है, ऐसी स्थिति में भूले–भटके आजकल के अज्ञानी मनुष्यों को गाय को पृथ्वी के सबसे प्रमुख आधार स्तम्भ के रूप में पहचानने के लिए ही अत्यधिक विशाल गौमाता की प्रतिमा को पर्वत पर स्थापित करने का कार्यक्रम श्रीबाबा के द्वारा बनाया गया है। केवल यहाँ पर गौमाता की विशाल प्रतिमा ही नहीं होगी, बल्कि गौमाता के पेट के भीतर श्रीराधाकृष्ण का मन्दिर और विशाल सत्संग–भवन का भी निर्माण किया जायेगा। यहाँ गौमाता की विशेष रूप से उपासना की जाएगी तथा सत्संग–भवन में प्रतिदिन आयोजित सत्संग के माध्यम से लोगों को गौमाता की शास्त्रोक्त महिमा से अवगत कराया जाएगा। सम्पूर्ण विश्व में गौवंश का संरक्षण और संवर्द्धन हो, इस

उद्देश्य से भक्तों के द्वारा यहाँ प्रतिदिन कीर्तन भी किया जाएगा । गौमाता के विशिष्ट महत्त्व के परिचायक इस मन्दिर के साथ ही श्रीबाबामहाराज चाहते हैं कि रत्नगिरि पर्वत और गौमाता मन्दिर को ब्रज के सबसे अधिक महत्वपूर्ण पर्यटक स्थल के रूप में स्थापित किया जाए । इसी क्रम में इस पर्वत पर झरनों और पर्वत के नीचे एक बहुत बड़ी झील बनाने का भी श्रीबाबा का विचार है । झील में श्रीराधामाधव के श्रीविग्रह को नौकाविहार भी कराया जाएगा । रत्नगिरि पर्वत पर निर्मित गौमाता मन्दिर ब्रज का सबसे बड़ा पर्यटक स्थल (तीर्थस्थल) बन जाए, इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर श्रीबाबा प्रतिदिन अपनी गाड़ी के द्वारा रत्नगिरि पर्वत पर जाते हैं और घण्टों तक वहाँ पर बैठकर श्रीराधारानी की महिमा से युक्त ग्रन्थ 'श्रीराधासुधानिधि' का पाठ करते हैं और इस प्रकार वे श्रीराधारानी से 'गौमाता–मन्दिर' के निर्माण की अपनी योजना के सम्बन्ध में प्रार्थना करते हैं ताकि दुनिया भर के लोग विश्व वन्द्या 'गौमाता' की महिमा से भलीभाँति परिचित हों और उसे अपनी आराध्या मानकर उसकी श्रद्धापूर्वक उपासना और सेवा करें।

प्रयागराज में भी बनेगा 'मानमन्दिर'

श्रीबाबामहाराज का जन्म तीर्थराज प्रयाग में हुआ था, उनके माता–पिता बहुत बड़े शिव भक्त और परम धार्मिक थे; रामेश्वरम् में उनके द्वारा की गयी शिवोपासना के फलस्वरूप श्रीबाबा का जन्म हुआ । प्रयाग में अपने जीवन के सोलह वर्ष व्यतीत करने के उपरान्त सत्तरह वर्ष की किशोरावस्था में ही ये महापुरुष अपनी आराध्या श्रीराधारानी की लीलाभूमि बरसाना धाम में आ गये । बरसाने में इन्होंने अखण्ड ब्रजवास करने का संकल्प लिया और ब्रजवास करते हुए इन्हें लगभग ७० वर्ष बीत चुके हैं । जब से इन्होंने बरसाना में अखण्डवास करने का दृढ़ संकल्प किया, उसके बाद से वे फिर कभी ब्रज के बाहर नहीं गये । अपनी जन्मभूमि प्रयाग में भी वे कभी नहीं गये किन्तु अब श्रीजी की ही आन्तरिक प्रेरणा से अखिलजगन्मंगलकारी श्रीबाबा के मन में ऐसी अभिलाषा का उदय हुआ कि तीर्थराज प्रयाग में अपने पैतृक आवासस्थल पर बरसाने के मानमन्दिर के प्रतिनिधि के रूप में दूसरे मानमन्दिर का निर्माण किया जाए ।

सहज सर्वभूतहितकारी महापुरुषों के मन में यदि किसी कामना की उत्पत्ति होती है तो वह हम जैसे संसारी जीवों की तरह अपने निजी स्वार्थपूर्ति के लिए नहीं होती, क्योंकि वे तो अपने रोम–रोम से मनसा वाचा और कर्मणा (मन, वाणी और कर्म से) संसार के समस्त प्राणियों के हित में ही संलग्न रहते हैं । श्रीबाबामहाराज भी ऐसे ही महापुरुष हैं, जिन्होंने मानमन्दिर में वास करते हुए सदा देश और समस्त विश्व के प्राणियों की भलाई के लिए ही मन से सोचा और उसी को लक्ष्य बनाकर उन्होंने अपनी आराधना का चयन किया। उनसे पूर्व ब्रज के अधिकांश संत वैराग्यपूर्ण रहनी के साथ ब्रजवासियों की मधुकरी के विशुद्ध अन्न से प्राणों का पोषण करते हुए एक आसन पर अहर्निश बैठकर श्रीराधामाधव की अष्टयाम लीला का चिन्तन करते हुए संसार से पूर्णतया

उदासीन रहकर एकान्त भजन में ही निमग्न रहा करते थे किन्तु श्रीबाबामहाराज को तो अपने आरम्भिक काल में ही जनशून्य मानमन्दिर में एकान्तिक भजन करने से संतोष नहीं हुआ, उनके परम कारुणिक हृदय ने उन्हें जगत्कल्याण के लिए विवश कर दिया और फलस्वरूप वे कुछ ब्रजवासियों को साथ लेकर मानमन्दिर के नीचे बसे मानपुर ग्राम में कीर्तन करने लगे। कीर्तन एक ऐसा साधन है जिसमें आत्मकल्याण के साथ सम्पूर्ण विश्व का भी मंगल होता है। श्रीमद्भागवत के अनुसार –

तस्मात् सङ्कीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम्।
महतामपि कौरव्य विद्ध्यैकान्तिकनिष्कृतिम् ॥

(श्रीभागवतजी ६/३/३१)

भक्तों के साथ मिलकर संकीर्तन करने से समस्त विश्व का मंगल होता है। इसलिए बड़े से बड़े पापों का सर्वोत्तम, अन्तिम और पाप–वासनाओं को भी निर्मूल कर डालने वाला प्रायश्चित्त यही है कि केवल भगवान् के गुण–लीला और नाम का संकीर्तन किया जाए।

इसीलिए मानमन्दिर में भी गाँव के बालकों और युवाओं को साथ लेकर श्रीबाबा ने संकीर्तन–आराधना का सूत्रपात किया, जो आज तक निर्विघ्न चल रही है। यहाँ तक कि गह्वरवन के साधुओं द्वारा इस सम्बन्ध में श्रीबाबा के गुरुदेव श्रीप्रियाशरणजीमहाराज से झूठी शिकायत करने पर भी उन्होंने संकीर्तनमय आराधना का त्याग नहीं किया। श्रीबाबा के विरुद्ध झूठी शिकायत किये जाने पर गुरुदेव ने उनसे कहा था कि तुम गाँव के ऊधमी बालकों को लेकर कीर्तन करना छोड़ दो और ब्रज के प्राचीन संतों की परम्परा से चली आ रही साधना अष्टायामलीला का चिन्तन करते हुए अहर्निश एक आसन पर बैठकर माला पर जप करो। श्रीगुरुदेव की समस्त आज्ञाओं का पालन करने वाले परन्तु समस्त जीवों के कल्याण में निरत श्रीबाबा ने गुरुदेव की इस आज्ञा का पालन न करते हुए उनसे स्पष्ट कह दिया कि सतत् एक आसन पर बैठकर जप और लीला–चिन्तन करना मेरे वश के बाहर है, ऐसी दुष्कर साधना करने में मैं असमर्थ हूँ। जबकि वास्तविकता यह थी कि अनन्त वात्सल्य और करुणा से भरपूर चित्त वाले बाबाश्री के द्वारा ग्रामवासियों को लेकर जो संकीर्तनमयी आराधना की जाती थी, उससे ब्रजवासियों का भी कल्याण होता था, सैकड़ों की संख्या में ब्रजवासी बालकों के हृदय में श्रीबाबा ने भक्ति का बीजारोपण कर दिया था, अब वह अंकुरित होकर क्रमशः पल्लवित और पुष्पित होने लगा तथा उसके द्वारा दूर–दूर तक भक्ति की दिव्य सुगन्ध चारों ओर फैलने लगी थी। ऐसी स्थिति में गुरु–आज्ञा से उस परोपकारिणी आराधना का त्याग कर देने पर उनकी हृदयगत भक्ति का पौधा श्रवण–कीर्तन रूपी जल से सिंचित न होने पर थोड़े ही दिनों में मुरझाकर सूख जाता। इसीलिए श्रीबाबा ने गुरुदेव के आदेश के बावजूद भी केवल अपने ही लाभ, अपनी ही आध्यात्मिक उन्नति के लिए की जाने वाली साधना का त्याग कर परोपकार को लेकर की जाने वाली आराधना को अंगीकार किया। श्रीमद्भागवत के अनुसार श्रीप्रह्लादजी ने भी इसका समर्थन करते हुए स्वयं नृसिंह भगवान् के समक्ष कहा है –

प्रायेण देव मुनयः स्वविमुक्तिकामा
मौनं चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठाः।
नैतान्विहाय कृपणान्विमुमुक्ष एको
नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये ॥

(श्रीभागवतजी ७/९/४४)

हे प्रभु ! बड़े–बड़े ऋषि–मुनि तो प्रायः अपनी मुक्ति के लिए निर्जन वन में जाकर इन्द्रियों को विषयों से रोककर कठोर साधन करते हैं परन्तु वे दूसरों के कल्याण के लिए प्रयत्न नहीं करते हैं। मेरी दशा तो कुछ और ही है, मैं संसार के इन भूले–भटके असहाय गरीबों को छोड़कर अकेले अपना ही कल्याण नहीं चाहता और भवाटवी में भटकते हुए इन प्राणियों के लिए आपके अलावा और कोई दूसरा सहारा भी नहीं दिखाई पड़ता है।

प्रह्लादजी यदि चाहते तो वे भी निर्जन वन में जाकर एकान्त में भगवान् को पाने के लिए नवधा भक्ति का साधन कर सकते थे परन्तु वे असुर बालकों के प्रति करुणा से अभिभूत थे, अतः उन्होंने अपने पिता के गुरुकुल में अध्ययन करते समय ही असुर बालकों को कल्याणकारी उपदेश देकर उन्हें भक्ति में लगाने का

प्रयत्न किया था और इसी कारण से उनका पिता हिरण्यकशिपु उनसे विशेष रूप से कुपित होकर उन्हें जान से मारने के प्रयास किया करता था, फिर भी प्रह्लादजी ने भक्तिमय परोपकार करना नहीं छोड़ा।

स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही कलियुग में चैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतरित हुए और क्रूर यवनों के शासनकाल में शाक्त बन चुके भक्तिशून्य बंगाल में भक्तों को साथ लेकर नगर–कीर्तन किया करते थे, उनके परिकरों में नित्यानन्द प्रभु इतने अधिक दयावान थे कि उन्होंने स्वयं जगाई–मधाई जैसे महादुष्टों के कल्याण के लिए उन्हें हरिनाम सुनाया तो इन आततायियों ने मदिरा की बोतल से प्रहार करके उनका सिर फोड़ दिया, फिर भी नित्यानन्दजी नहीं रुके और उनके कल्याण हेतु उन्हें हरिनाम सुनाते रहे एवं चैतन्य महाप्रभुजी जब इन दुष्टों को चक्र का आवाहन करके वध करने के लिए उद्यत हो गये तो उन्होंने महाप्रभु के चरण पकड़कर उन्हें ऐसा करने से रोका और उन पर भी कृपा करने की प्रार्थना की। इसी प्रकार हरिदासठाकुरजी को मुसलमान जल्लादों ने हरिनाम–कीर्तन करने के कारण बाईस बाजारों में घुमाकर कोड़ों से पीटा, फिर भी वे इन क्रूर नास्तिकों के कल्याण के लिए प्रसन्न मन से हरिनाम का जोर–जोर से उच्चारण करते रहे।

कलियुग में यवनों के शासनकाल में प्रकट हुए सभी महापुरुषों ने मनुष्यों के कल्याण के लिए दमनकारी मुस्लिम शासकों की बिल्कुल भी परवाह न करते हुए पूर्ण निर्भयता के साथ हरिनाम–कीर्तन का प्रचार किया। वे केवल अपने ही कल्याण के लिए एकान्तिक भजन तक सीमित नहीं रहे। अतएव आधुनिक कलिकाल में प्रकटे परम करुणासिन्धु श्रीबाबामहाराज ने सदैव ही समाज कल्याण के लिए अपना जन–जागृति अभियान जारी रखा। इसी कार्यक्रम की श्रंखला में अब एक अत्यन्त नवीन अध्याय जुड़ने वाला है और वह है तीर्थराज प्रयाग में अपने माता–पिता के सदन, जहाँ उनका जन्म हुआ, उसी स्थान पर बरसाने के मानमन्दिर का प्रतिनिधित्व करने वाले एक दूसरे मानमंदिर का निर्माण करना और इस सन्दर्भ में स्वयं प्रयाग जाना। यह भी अत्यधिक आश्चर्यजनक है कि जब से महाराजश्री का अपनी जन्मभूमि से बरसाने में पदार्पण हुआ, उन्होंने अखण्ड ब्रजवास का संकल्प लेकर इस व्रत को आजीवन दृढ़तापूर्वक अपनाया और अब जबकि उनकी आयु ८५ वर्ष की हो चुकी है, शरीर भी स्वस्थ नहीं रहता, फिर ऐसी स्थिति में वे अपने आजीवन अपनाये गये अखण्ड ब्रजवास के नियम को तोड़कर मन्दिर–निर्माण के कार्यक्रम के दौरान प्रयाग जायेंगे। महापुरुषों के जीवन को, उनकी मनोदशा को समझना साधारण मनुष्यों के मन–बुद्धि के बाहर की बात है, स्वयं भक्तमाल के रचयिता गोस्वामी श्रीनाभाजी ने कहा है –

गाऊँ रामकृष्ण, नहिं पाऊँ भक्ति दाँव को।

(श्रीप्रियादासजी कृत कवित्त – ११)

मैं भगवान् श्रीरामकृष्ण के चरित्रों का तो कुछ गान भी कर सकता हूँ परन्तु भक्तों के चरित्रों का ओर–छोर नहीं पा सकता हूँ क्योंकि उनके रहस्य अति गम्भीर हैं, मैं भक्तों की भक्ति के रहस्य को नहीं पा सकता।

थोड़ा बहुत अनुमान लगाकर यही कहा जा सकता है कि जनकल्याण की भावना के कारण ही श्रीबाबा अपने दीर्घकालीन जीवन में अपने आजीवन अखण्ड ब्रजवास के नियम को तोड़कर प्रयाग जायेंगे। प्रयाग में मानमन्दिर–निर्माण और वहाँ जाने के पीछे कारण यह नहीं है कि बाबाश्री को अपनी मातृभूमि से विशेष अनुरक्ति है और अपने माता–पिता के ऋण से मुक्त होने के लिए वे अपने पैतृक आवास पर ही मन्दिर–निर्माण करने जा रहे हैं। इसका सबसे बड़ा कारण यही प्रतीत होता है, जैसा कि श्रीबाबा अपने श्रीमुख से अक्सर कहा करते हैं कि ब्रजभूमि को छोड़कर प्रयाग पृथ्वी के समस्त तीर्थों के राजा हैं और स्वयं भगवान् ने ही उन्हें यह पदवी प्रदान की है। इसीलिए वर्ष में एक बार माघ के पावन मास में पृथ्वी के छोटे–बड़े समस्त तीर्थ अपने सम्राट तीर्थराज प्रयाग का सम्मान करने हेतु उनकी पूजा करने के लिए प्रयाग में उपस्थित होते हैं। माघ के इस पावन माह में ही त्रिवेणी संगम के तट पर भारतवर्ष के समस्त

प्रान्तों के तीर्थयात्री कल्पवास करने के लिए रुकते हैं और साधनामय जीवन व्यतीत करते हुए सन्त–महापुरुषों के सत्संग का लाभ उठाते हैं। प्रयाग में माघ माह का प्रतिवर्ष का कल्पवास भारतवर्ष के अन्य स्थानों (हरिद्वार, उज्जैन, नासिक) में आयोजित होने वाले महाकुम्भ मेले के बराबर होता है और फिर जब प्रयागराज में बारह वर्ष बाद महाकुम्भ मेले का और छः वर्ष के बाद अर्द्धकुम्भ का आयोजन होता है तो वह केवल भारत का ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व का सबसे बड़ा धार्मिक आयोजन होता है। प्रयाग के पिछले कुम्भ पर्व के विशाल आयोजन में पूरे विश्व से इतनी बड़ी संख्या में लोग सम्मिलित हुए और पूर्ण सुव्यवस्था व सफलता के साथ एक महीने तक यहाँ धार्मिक कार्यक्रम सुसम्पन्न हुए कि उसे देखकर सारी दुनिया ने उसका लोहा माना और आधुनिक विश्व के सबसे बड़े विकसित देश अमेरिका के एक प्रान्त के गवर्नर ने तो प्रयाग–कुम्भ के सफल आयोजन की भूरि–भूरि प्रशंसा की तथा विश्व के सबसे बड़े इस पर्व के इतने सुव्यवस्थित कार्यक्रम के कुशल प्रबन्ध के लिए प्रयाग–कुम्भ मेला के सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारी को अमेरिका में आमन्त्रित करके उनका सम्मान किया। उन्होंने यहाँ तक कहा कि दुनिया के सर्वाधिक प्रगतिशील राष्ट्र अमेरिका में तो यदि किसी बहुत बड़े कार्यक्रम में पचास हजार लोगों की भीड़ एक दिन के लिए भी एकत्रित होती है तो उसकी कुशल व्यवस्था का प्रबन्ध करने में अमेरिका के बड़े–बड़े प्रशासनिक अधिकारियों को अत्यन्त कठिनाई होती है और यह अत्यधिक आश्चर्यजनक है कि भारत जैसे विकासशील देश में कुम्भ जैसे विशाल पर्व में एक करोड़ लोग सम्मिलित होते हैं और एक महीने तक यह कार्यक्रम पूर्ण कुशलता के साथ सफलतापूर्वक आयोजित किया जाता है।

इस तरह देखा जाए तो तीर्थराज प्रयाग में प्रतिवर्ष माघ मास का कल्पवास, छः वर्ष बाद कुम्भ और बारह वर्ष बाद आयोजित होने वाला महाकुम्भ; ये ऐसे विशिष्ट धार्मिक आयोजन हैं, जिनमें देश–विदेश के लाखों–करोड़ों लोग सम्मिलित होते हैं परन्तु विश्व ब्रह्माण्ड से अतीत ब्रजभूमि का ब्रजरस सबसे विलक्षण है, इसको प्रयाग, प्रयागवासी तो क्या भगवान् के नित्य धाम वैकुण्ठ के वासी भी नहीं प्राप्त कर सकते और इसीलिए जब ब्रजभूमि में श्रीकृष्णलीला के दौरान ब्रजवासियों को श्रीकृष्ण की भगवत्ता का बोध हुआ तो उन्होंने उनके नित्य धाम वैकुण्ठ का दर्शन करने की प्रार्थना की। ब्रजवासियों की अभिलाषा की पूर्ति के लिए श्रीकृष्ण ने उन्हें अपने वैकुण्ठ लोक का दर्शन कराया परन्तु वैकुण्ठ ऐश्वर्यमय धाम है जबकि 'ब्रज' माधुर्यमय धाम है। वैकुण्ठ में ब्रजवासियों को श्रीकृष्ण के अनन्त ऐश्वर्य का दर्शन हुआ, वहाँ उन्होंने देखा कि श्रीकृष्ण चतुर्भुज रूप से एक ऊँचे सिंहासन पर विराजित हैं और वहाँ के लोग उन्हें 'भगवान्–भगवान्' कहकर उनकी जय–जयकार कर रहे हैं। जब ब्रजवासी सखाजन 'कन्हैया' कहकर सख्यभाव से उनसे बोलने और उनके पास जाने का प्रयास करने लगे तो वैकुण्ठ के पार्षदों ने ब्रजवासियों को बहुत फटकारा और उन्हें कृष्ण से मिलने से रोक दिया; यह सब देखकर ब्रजवासियों को बहुत दुःख हुआ और वे अपनी 'ब्रजभूमि' को याद करके कहने लगे –

कहा करों वैकुण्ठहि जाय।
जहाँ नहीं वंशीवट यमुना गिरिगोवर्धन नन्द की गाय॥
जहां नहीं यह कुंज लता द्रुम मंद सुगन्ध बहत नहिं वाय।
कोकिल हंस मोर नहिं कूजत, ताको बसिबो काहि सुहाय॥
जहाँ नहीं वंशी धुनि बाजत कृष्ण न पुरवत अधर लगाय।
प्रेम पुलक रोमांच न उपजत, मन वच क्रम आवत नहीं धाय॥
जहाँ नहीं यह भुवि वृन्दावन, बाबा नन्द यशोमति माय।
'गोविन्द' प्रभु तजि नन्द सुवन को, ब्रज तजि वहाँ मेरी बसै बलाय॥

अरे ! हम लोग इस वैकुण्ठ में व्यर्थ ही आये। ब्रज में तो हम अपने कन्हैया के साथ प्रेम से हँसते–बोलते एवं विभिन्न सुखदायक क्रीड़ायें किया करते थे किन्तु इस वैकुण्ठ में तो हम कन्हैया से बात भी नहीं कर सकते, यहाँ के पार्षद हमारे बोलने पर भी प्रतिबन्ध लगा रहे हैं। इस तरह वैकुण्ठ के प्रेमविहीन नीरस ऐश्वर्य से जब ब्रजवासी अत्यन्त दुःखी होकर प्रेमरसमय धाम 'ब्रज' का स्मरण करने लगे तो श्यामसुन्दर ने तुरन्त ही उन्हें

ब्रजभूमि में भेज दिया। ब्रज–वसुन्धरा का दर्शन करके सभी ब्रजवासी अत्यधिक आह्लादित हुए। इसी प्रकार लक्ष्मीजी ने भी ब्रजरस का आस्वादन करने के लिए वैकुण्ठ का त्यागकर सदा के लिए ब्रजभूमि का आश्रय ले लिया है। गोपीगीत में स्वयं गोपिकाओं ने कहा है –

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः

श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि। (श्रीभागवतजी १०/३१/१)

इससे यह स्पष्ट पता चल जाता है कि जब वैकुण्ठ जाकर भी ब्रजवासी पछताये और स्वयं वैकुण्ठ की अधिष्ठात्री देवी, भगवान् नारायण की अर्धांगिनी व उनके वक्षःस्थल पर निवास करने वाली महालक्ष्मी तक ने वैकुण्ठ का त्यागकर 'ब्रजरस' के आस्वादन हेतु सर्वदा के लिए ब्रजधरा का आश्रय ग्रहण कर लिया है तो फिर अन्य लोगों को 'ब्रज' के बिना कहाँ से रस व प्रेम की प्राप्ति हो सकेगी। 'ब्रजरस' सभी के लिए परमावश्यक है और इसीलिए श्रीबाबामहाराज को यह प्रतीत हुआ कि प्रयागवासी कुम्भ, महाकुम्भ और प्रत्येक वर्ष माघ के कल्पवास के बावजूद भी त्रिगुणातीत परमाद्भुत 'ब्रजरस' से पूर्णतया वंचित और अनभिज्ञ हैं, अतः इन्हें भी उस रस की प्राप्ति हो, इस उद्देश्य के साथ ही श्रीबाबामहाराज ने प्रयाग में अपनी जन्मस्थली पर दूसरे 'मानमन्दिर' के निर्माण की योजना बनायी है और इस परम मंगलमय अवसर पर वे स्वयं प्रयाग जाकर वहाँ के निवासियों को ब्रजभूमि की अलौकिक महिमा तथा यहाँ की रसमयी भक्ति से परिचित कराना चाहते हैं। हालाँकि ब्रजभूमि का एक दिन का वियोग भी श्रीबाबा को असह्य है, अतः वे वहाँ रुकना नहीं चाहते, वहाँ के निवासियों को अपने वचनामृत से लाभान्वित करके उसी दिन 'बरसाना' वापस लौटना चाहते हैं। इसके लिए मानमन्दिर के प्रबन्धक एक हैलीकॉप्टर की व्यवस्था करेंगे, जो थोड़ी ही देर में 'श्रीबाबा' को प्रयाग पहुँचाकर, उसी दिन वापस 'बरसाना' में ले आयेगा। प्रयाग में मानमन्दिर का निर्माण होने से वहाँ के निवासियों के लिए उस मन्दिर में ब्रज की महिमा और यहाँ की रसीली भक्ति का प्रचार करने वाला 'सत्संग' प्रदान किया जाएगा। इसी तरह श्रीबाबामहाराज द्वारा ब्रज के लोकगीतों पर आधारित दिव्य ग्रन्थ 'रसिया रसेश्वरी' के गीतों का भी गायन किया जाएगा ताकि प्रयागवासी 'ब्रजरस' का आस्वादन कर सकें। इसके साथ ही बाबाश्री की यह भी अभिलाषा है कि कुम्भ, महाकुम्भ और माघ के कल्पवास के दौरान ब्रजवासीजन भी प्रयाग जाते हैं तो उन्हें वहाँ रहने में कोई असुविधा न हो; प्रयाग के मानमन्दिर में निःशुल्क ही निवास करके वे वहाँ के कुम्भ और कल्पवास का लाभ ले सकते हैं। इन्हीं सब उद्देश्यों के साथ श्रीबाबामहाराज के द्वारा प्रयागराज में मानमन्दिर–निर्माण व उसके उद्घाटन के अवसर पर स्वयं भी वहाँ जाने की योजना बनायी गयी है।

गौ-सेवकों की जिज्ञासा पर माताजी गौशाला का

Account number दिया जा रहा है –

SHRI MATAJI GAUSHALA, GAHVARVAN,

BARSANA, MATHURA

Bank – Axis Bank Ltd A/C – 915010000494364

IFSC – UTIB0001058

BRANCH – KOSI KALAN

MOB. NO. - 9927916699

श्री यमुना जी के विभिन्न स्वरूप

बाबाश्री के सत्संग 'राधासुधानिधि' (९/६/२००३) से संकलित

जिस प्रकार अंशिनी श्रीराधिका के गोपीगण, महिषीगण, लक्ष्मीगण इत्यादि गण हैं; ये सब राधिका ही हैं, उनके अनेक रूप हैं, जिसमें ऐश्वर्य रूप का विकास हो गया वे लक्ष्मीगण हैं । वैसे ही यमुनाजी के भी अनेक रूप हैं –

(१) नित्य रसवाहिनी यमुना हैं, जहाँ शुद्ध रूप से लाल–लाड़ली क्रीडा करते हैं । सनत्कुमारसंहिता में नित्य धाम वाली यमुना का वर्णन मिलता है –

युवयोर्वक्तृ संजाताः केलिश्रम कणाः शुभाः ।
अतः संजायते नूनं तटजा कापि चोत्तमा ॥
सर्वैः सखीगणैः पेयं त्वं प्रसीद कुरुष्व च ।
इदमेव परं पुण्यं युवयोः केलिजलं शुभम् ।
तस्यास्तद् वाक्यमाकर्ण्य सा चकार नदीं परम् ॥

(सनत्कुमारसंहिता)

श्रीसनत्कुमारजी ने बताया है कि यमुनाजी क्या हैं, इनका प्राकट्य कैसे हुआ है ?

नित्यधाम में श्रीराधारानी और श्रीकृष्ण लीलाविहार कर रहे थे तो दोनों के मुख पर लीलादृष्टि से श्रमकेलि के कण (बिंदु) आये अर्थात् इस श्रम से जो दिव्य रसमय स्वेदों (पसीने की बूँदों) की उत्पत्ति हुई, उन कणों के दर्शन से सखीगणों को अद्भुत रस की अनुभूति हुई (दर्शनमात्र से अनिर्वचनीय आनन्द मिला) । सखियों ने कहा कि आप दोनों के मुख से परम पवित्र (मंगलकारी) श्रमकेलि–कण उत्पन्न हुए हैं, अतः कोई उत्तम नदी अवश्य इस रूप में आयी है, अब उसका रूप आप प्रकट करिए क्योंकि अनन्त की तो एक कणिका भी अनन्त होती है । आप हम सब पर प्रसन्न होकर इनको जल रूप प्रदान करें, ये सबसे पवित्र जल होगा जो आपकी केलि से उत्पन्न हुआ है । जब श्रीजी ने देखा कि ललिताजी के साथ सभी सहचरियाँ प्रार्थना कर रही हैं तो उन्होंने अपने ललाट (माथे) की बूँदों से यमुना बना दिया । यही नित्यधाम (गोलोक) की यमुनाजी धराधाम पर भी अवतरित होती हैं ।

(२) रस रूपा श्रीयमुनाजी वृन्दावन धाम में बहती हैं जो नित्य धाम से आयी हैं ।

(३) यूथेश्वरी रूप से श्रीयमुनाजी रास में जाती हैं ।

(४) समुद्र–पत्नी 'नदी' रूपा श्रीयमुनाजी का दाऊजी ने आकर्षण किया था –

श्रीकालिन्द्या एव संज्ञा छायान्यायेन तच्छाया विभूतिरूपा भगवत एव महाविभूतेः समुद्रस्य भार्य्यास्वरूपा मूर्त्तिरेका ज्ञेया तथाच तत्रैव प्रत्युवाचार्णववधूमिति तां प्रति सम्बोधनं च सागराङ्गने इति ।

(श्रीजीवगोस्वामी कृत वैष्णवतोषिणी टीका भागवत १०/६५/२४)

रामस्तु यमुनामाह स्नातुमिच्छे महानदि ।
एहि मामभिगच्छ त्वं रूपिणी सागरंगमे ॥

(श्रीहरिवंशपुराण, विष्णुपर्व – ४६/३०)

(५) जब यमुनाजी यहाँ अवतार लेती हैं कलिन्दगिरि से प्रकट होकर के, जो सूर्य की पुत्री व कृष्ण की पटरानी बनती हैं । इस प्रसंग को समझने के लिए इसके पूर्व की संक्षिप्त कथा बता रहे हैं कि त्वष्टा की पुत्री संज्ञा से सूर्य का विवाह हुआ था, उनसे तीन संतानें उत्पन्न होती हैं – वैवस्वत मनु, यमराज और यमुना । 'संज्ञा' सूर्य के तेज को सह नहीं पाई, वे अपनी छाया (प्रतिरूप) स्थापित करके तपस्या करने चली गयीं, सूर्यदेव समझ नहीं पाए । वैवस्वत मनु, यमराज और यमुना की सौतेली माँ (संज्ञा की छाया) ने तीनों पुत्रों का अपमान किया अर्थात् उनसे द्वेषपूर्ण व्यवहार किया, जिससे यमराज को गुस्सा आया और अपनी सौतेली माँ को मारने के लिए

पाद–प्रहार किया तो उस (छाया) ने श्राप दे दिया कि तेरा पैर टूटकर गिर जाए, जब ये श्राप सूर्य को सुनाई दिया तो वे सोचने लगे कि अरे ! ऐसा तो कोई माँ नहीं कर सकती। 'सूर्यदेव' उसके बाल पकड़कर बोले कि तू कौन है ? इसकी माँ तो है नहीं ...सही बता ?

तब उसने कहा कि मैं संज्ञा की छाया हूँ, संज्ञा तो घोड़ी का रूप बनाकर के तप करने गयी हैं।

तब सूर्य विचार करने लगे कि सौतेली माँ ही ऐसा दुष्कृत्य कर सकती है, फिर उन्होंने अपने पुत्र यमराज से कहा कि तुम्हारा टाँग तो नहीं टूटेगा, केवल शरीर का एक बाल (रोम) गिर जाएगा जिससे इस (सौतेली माँ) की भी बात व्यर्थ नहीं होगी और तुम्हारा भी कुछ नुक्सान नहीं होगा। बाद में छाया से भी चार सन्तानें उत्पन्न हो जाती हैं –१.सावर्णी मनु, २. शनैश्चर (शनिदेव) ३. तप्ती (जिसका संवरण से विवाह हुआ था, महाभारत में कथा है।) ४. वृष्टि (भद्रा)। इसके उपरान्त 'सूर्यदेव' घोड़ी के रूप में तप करती हुई 'संज्ञा' की याद में घोड़ा बनकर वहाँ पहुँच गये, दोनों का परस्पर मिलन हुआ है; सूर्य के तेज को संज्ञा सह नहीं पाई और उन्होंने नाक से उसे फ़ेंक दिया जिससे २ अश्विनी कुमार हुए हैं; सूर्य के एक पुत्र अश्वों के अधिपति 'रैवत' भी हुए हैं। इस प्रकार से सूर्य की १० संतानें उत्पन्न हुई हैं, जिसमें एक संतान यमुनाजी हैं, इसलिए इन्हें सूर्य–पुत्री कहते हैं।

एक बार कृष्ण अर्जुन के साथ भ्रमण कर रहे थे तो उन्होंने देखा कि यमुना–तट पर कोई एक तपस्विनी तप कर रही है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि अर्जुन ! तुम देखो, ये कौन तपस्विनी है ? ऐसा लगता है कि ये चिरकाल से कोई पिपासा लेकर तप कर रही है।

श्यामसुन्दर जानते तो थे ही कि मेरी प्राप्ति के लिए तप कर रही है लेकिन अर्जुन को उस साधिका का परिचय पूछने के लिए उसके पास भेजा क्योंकि सच्चे प्रेम में छिपाव होता है –

सर्व ढके सोहत नहीं, उघरे होत कुवेष।
अर्ध ढके सोहत सदा, कवि अक्षर कुच केश॥

'श्रृंगार–रस' जब पूर्ण रूप से लज्जाहीन (अनावृत) हो जाता है तो पशुवृत्ति का है, वह रसाभास बन जाता है, उसको रस के विवेचकों (साहित्यकारों) ने रस नहीं माना है; जब उसमें लज्जा आदि उचित उदात्त नायिकाओं के गुण होते हैं, तब ही वह रस बनता है।

अर्जुन उस तपरत आराधिका का परिचय पूछने जाते हैं। उस तपाराधिका की बड़ी सुन्दर कान्ति है, नील विग्रह है; आराधना से एक बड़ी सुन्दर नीली कान्ति का विस्तार हो रहा है, शान्त मुद्रा में हैं। (ये जब से सूर्य–पुत्री बनी थी, तभी से कृष्ण–प्राप्ति के लिए तप कर रही थीं। जब लीलादृष्टि से यमुनाजी संसार में आने के लिए सूर्य से प्रकट हुई थीं तो उन्होंने अपने पिता से कहा कि मेरे पति तो कृष्ण ही हैं, इसलिए उनके पिता सूर्यदेव ने कृष्ण की प्राप्ति के लिए आराधना हेतु एक भवन पहले से आयी हुई श्रीयमुनाजी में बनवा दिया था, उसी में तपस्या कर रही थीं।) अर्जुन पूछते हैं कि हे देवी ! आप कौन हैं ? तब सूर्य–पुत्री यमुनाजी कहती हैं –

कालिन्दीति समाख्याता वसामि यमुना जले।
निर्मिते भवने पित्रा यावदच्युत दर्शनम्॥

(श्रीभागवतजी १०/५८/२२)

"हे अर्जुन ! मेरा नाम कालिन्दी है, मैं इसी यमुनाजी के पानी में रहती हूँ (अर्थात् श्रीयमुनाजी का प्रवाह पहले से आ रहा है, उसमें कलिन्दगिरितनया का प्रवाह मिल गया; इसकी कथाएँ पुराणों में वर्णित हैं।) हमारे पिता सूर्य ने यमुनाजल के भीतर एक रत्नमय महल बनवाया है कृष्ण की प्राप्ति के लिए। मैं तब से ही यहीं पर श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिए आराधना कर रही हूँ, जब तक श्रीकृष्ण नहीं मिलेंगे तब तक मेरा तप चलता रहेगा।" अर्जुन समझ गए और जाकर के कृष्ण को बताया, तब 'कृष्ण' कालिन्दी (यमुना) का वरण कर अपनी पटरानी बनाते हैं। जिस यमुनाजल में सूर्यदेव ने अपनी पुत्री यमुना के लिए भवन बनवाया था, उन यमुनाजी का नित्य धाम से अवतरण होता है, जो कृष्णपटरानी (यमुना) से भी बहुत पहले से प्रवाहित हो रही हैं।

गंगा से अधिक महिमान्वित 'यमुना'

'रसीली ब्रजयात्रा –२' से संकलित

ब्रज में प्रवाहित होने से गंगा से भी शतगुणित महिमा है श्रीयमुना की –

गंगा शतगुणा प्रोक्ता माथुरे मम मण्डले ।
यमुना विश्रुता देवी नात्र कार्या विचारणा ॥

(वाराहपुराण १५०/३०)

फिर पद्मपुराण व ब्रह्मवैवर्तपुराण में तो श्रीयमुनाजी को श्रीकृष्ण का ही स्वरूप कहा गया है अतः इनका एक नाम कृष्णा भी है –

रसो यः परमाधारः सच्चिदानन्द लक्षणः ।
ब्रह्मेत्युपनिषद्गीतः स एव यमुना स्वयम् ॥

(पद्मपुराण, पातालखण्ड)

ब्रह्म की रसरूपता ही यमुना है। सनत्सुजातीय संहिता के अनुसार श्रीयुगल सरकार के विहार का श्रम ही श्रीयमुना है।

यया चरणपद्मजा मुररिपोः प्रियं भावुका
समागमनतो भवत्सकलसिद्धिदा सेवताम् ।
तया सदृशतामियात्कमलजा सपत्नीवय–
हरिप्रियकलिन्दया मनसि मे सदा स्थीयताम् ॥

(श्रीमद्वल्लभाचार्य विरचित यमुनाष्टक – ५)

"गंगा भी जिसके समागम से सबको सिद्धि देने वाली बन गई, वह कालिन्दी हमारे मन में रहे।" सत्य तो यह है कि गंगावतरण में भगीरथ का तप एवं सरस्वती का शाप गौण कारण है। मुख्य कारण है – श्रीराधारानी की इच्छा एवं श्रीयमुनाजी की कृपा। नारदजी के द्वारा गंगावतरण पूछे जाने पर स्वयं श्रीनारायण भगवान् ने कहा – श्रीराधारानी एवं श्यामसुन्दर के श्रीअंग से प्रकट हुई गंगा उनका अंश व उन्हीं का स्वरूप है। एक समय गोलोक में गंगा श्रीकृष्ण के पार्श्व में विराजमान होकर ललित नेत्रों से श्रीकृष्णरूपसुधा का पान कर रही थीं, तब तक असंख्य सखियों के समूह से घिरीं श्रीराधारानी वहाँ आईं। जीवों पर अनुग्रह करने हेतु श्रीराधारानी ने कोप लीला की। **रतिवर्धन सुख मान कुँवरि को ।**

(महावाणी)

श्रीराधारानी के नेत्रों में लालिमा और फड़कते ओठों को देखकर स्वयं श्रीकृष्ण ने श्रीराधारानी की स्तुति की।

गंगा भी सिंहासन से नीचे खड़ी होकर स्तवन करने लगी, नेत्र बंद करके श्रीकृष्ण के चरणों की शरण में गयी। श्रीकृष्ण ने उस समय अत्यधिक डरी हुई गंगा को आश्वस्त किया। अब गंगा निर्निमेष नेत्रों से सिंहासनासीन श्रीयुगल का दर्शन करने लगी। इस पर श्रीराधारानी ने पूछा – 'हे प्राणनाथ ! आपके प्रसन्न मुखाम्बुज को निहारने वाली यह देवी कौन है ? आप भी इसकी ओर देखकर मधुर–मधुर हँस रहे हैं। मैंने अनेक बार आपको अनेकों से प्रेम करते हुए देखा है। बार–बार क्षमा कर देने का मेरा स्वभाव बन गया है। एक बार आपने विरजा से प्रेम किया, मेरे देख लेने पर वह देह–त्याग कर महान नदी के रूप में परिणित हो गई। शोभा से प्रेम किया तो वह भी देह–त्याग कर चंद्रमंडल चली गई। प्रभा से प्रेम किया तो वह शरीर त्यागकर सूर्यमण्डल चली गई और एक समय 'शान्ति' नामक गोपी के साथ रासमण्डल में देखा, वह तो देह त्यागकर भुजा में ही लीन हो गई। मैंने आपको क्षमा से प्रेम करते देखा तो उस समय वह देह त्यागकर पृथ्वी पर चली गयी।' श्रीराधा इस प्रकार कह ही रहीं थीं कि उनके अभिप्राय को जानकर 'पूर्ण योग सिद्धा गंगा' भी श्रीकृष्ण–चरणों में विलीन हो गईं; तब श्रीराधा ने गोलोक, वैकुण्ठ, ब्रह्मलोकादि में गंगा को बहुत ढूँढ़ा किन्तु वे नहीं मिलीं। सर्वत्र जल का नितान्त अभाव हो गया। ब्रह्मादि देवों ने गोलोक आकर श्रीकृष्ण को प्रणाम कर उनका स्तवन–आराधन किया। श्रीकृष्ण बोले – 'ब्रह्मन ! मैं समझ गया हूँ, आप सब गंगा को ले जाने के लिए यहाँ आये हैं किन्तु इस समय वह मेरी शरण में है। कृपा कुपिता श्रीराधा उसका पान करना चाहती थीं, उसने मेरी शरण ग्रहण की। यदि आप गंगा की पूर्ण रक्षा कर सकें तब ही मैं दे सकूँगा।' समस्त देवताओं ने राधारानी की स्तुति की – "हे देवि ! यह गंगा आपके और श्रीकृष्ण के श्रीअंग से समुत्पन्न है। रासमण्डल में

शंकर के संगीत ने आपको मुग्ध कर दिया था, उसी अवसर पर यह द्रव रूप में प्रकट हो गई। आप दोनों के श्रीअंग से समुत्पन्न होने के कारण यह आपकी प्रिय पुत्री के समान है।" इस प्रकार ब्रह्माजी के स्तुति करने पर राधारानी प्रसन्न हो गई एवं गंगा को निर्भय कर दिया। तब गंगा श्रीकृष्ण के चरणाङ्गुष्ठ के नखाग्र से निकलकर विराजमान हुई। श्रीकृष्ण के चरणकमल से प्रकट होने से गंगा 'विष्णुपदी' कहलाई, किन्तु जब से गंगा ने श्रीकृष्णचरणों को छोड़ा तब से आज तक उनका बहना बन्द नहीं हुआ अर्थात् जीवन में विश्राम नहीं आया। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी की वाणी में –

सुनु मन मूढ़ सिखावन मेरो ।
हरि-पद-बिमुख लह्यो न काहु सुख,
सठ ! यह समुझ सबेरो ॥
बिछुरे ससि-रबि मन-नैननितें,
पावत दुख बहुतेरो ।
भ्रमत श्रमित निसि-दिवस गगन महँ,
तहँ रिपु राहु बड़ेरो ॥
जद्यपि अति पुनीत सुरसरिता,
तिहुँ पुर सुजस घनेरो ।
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित,
बहिबो ताहू केरो ॥
छुटै न बिपति भजे बिनु रघुपति,
श्रुति संदेहु निबेरो ।
'तुलसिदास' सब आस छाँड़ि करि,
होहु रामको चेरो ॥

रे मूढ़ मन ! मेरी यह सीख मान ले। आज तक किसी भी भगवद्विमुख को सुख नहीं मिला।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।

(यजुर्वेद.पुरुष सूक्त-३१/१२)

वेद कहते हैं 'सूर्य, चन्द्र' भगवान् के नेत्रों से प्रकट हुए किन्तु ये भी भगवान् के नेत्रों से बिछुड़े, उन्हें भी आज तक विश्राम नहीं मिला, तब से दिन-रात चल ही रहे हैं। इसके अतिरिक्त चन्द्रमा को राजयक्ष्मा रोग हो गया, द्वादश आदित्यों में पूषा के दाँतों को वीरभद्र ने तोड़ा एवं रावण से पराजित होकर सूर्य का लोलार्क (काशी में एक स्थान) में पतन हुआ। ब्रज में सूर्यपत्तन वन (सामईखेड़ा) में भी सूर्य आकर गिरे हैं, भगवान् की शरण लेने से रक्षा हुई। इसके अतिरिक्त राहु-केतु भी इन्हें समय-समय पर ग्रस लेते हैं। इसी प्रकार एकबार चरणों से बिछुड़ जाने पर गंगाजी को भी आज तक घूमना पड़ रहा है। ब्रह्माजी ने वह जल अपने कमण्डलु में रख लिया; अनन्तर गंगा को उन्होंने श्रीराधामन्त्र की दीक्षा, स्तोत्र, कवच, पूजा एवं ध्यान-विधि बताई। भगवान् ने कहा – हे ब्रह्मन ! आप गंगा को स्वीकार करो। विष्णो ! महेश्वर !! विधाता !!! गोलोक में कालचक्र का कोई प्रभाव नहीं है किन्तु इस समय कल्प समाप्त होने के कारण सम्पूर्ण विश्व प्रलय-जल में डूब गया है। कई ब्रह्मा, शिवादि समाप्त हो चुके हैं और कितने ही होंगे। नारदजी ने पूछा – भगवन् ! लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा एवं तुलसी ये चारों भगवान् नारायण की प्रिया हैं, इनमें से गंगा को विष्णुप्रिया होने का सौभाग्य कैसे प्राप्त हुआ, आप कृपा करके बताएँ।

भगवान् नारायण बोले – एक समय ब्रह्माजी गंगा को साथ लेकर वैकुण्ठ आये। प्रभु को प्रणाम करके बोले – भगवन् ! श्रीराधाकृष्ण के अंग से समुद्भूत गंगा इस समय एक सुशीला देवी के रूप में विराजमान हैं जो श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी का वरण करना नहीं चाहती हैं किन्तु मानिनी श्रीराधा ऐसा नहीं चाहती हैं, वे तो गंगा का पान ही कर रही थीं कि गंगा ने कृष्णचरणाश्रय लेकर बहुत बुद्धिमानी का कार्य किया। मेरी प्रार्थना है कि अब आप सुरेश्वरी गंगा को पत्नी रूप में स्वीकार करें। ब्रह्माजी की प्रार्थना पर परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण दो भागों में विभक्त हो गए – (१) द्विभुज कृष्ण (२) चतुर्भुज श्रीहरि।

श्रीराधा भी दाहिने अंश से श्रीराधा ही रहीं और उनके वामांश से लक्ष्मी का प्राकट्य हुआ।

नारदजी ! इस प्रकार ब्रह्माजी ने श्रीहरि के साथ गंगा का विवाह कराया और वहाँ से चले गये। गंगा, तुलसी, लक्ष्मी व सरस्वती ये चारों ही चतुर्भुज श्रीहरि की प्रिया हैं। एक समय सरस्वती ने डाह से गंगा को मृत्युलोक में जाने का शाप दे डाला, उधर गंगा ने भी सरस्वती को शाप दे दिया। एक-दूसरे के शाप से दोनों का मर्त्यधरा पर अवतरण हुआ। (ब्रह्मवैवर्त/प्रकृति खण्ड/अध्याय ११, १२ .....)

श्रीब्रज–प्रेमिका 'यमुनाजी'

श्रीयमुनाजी की कृपा से गंगा को भी ब्रज में प्रवेश मिला; गर्गसंहिता में वर्णन है कि जिन श्रीयमुना के बिना श्रीराधारानी ने भूतल पर आने से इन्कार कर दिया –

यत्र वृन्दावनं नास्ति यत्र नो यमुना नदी ।
यत्र गोवर्द्धनो नास्ति तत्र मे न मनः सुखम् ॥

(गर्गसंहिता, गोलोकखण्ड ३/३२)

श्रीजी बोलीं – श्रीवृन्दावन, श्रीयमुना, श्रीगोवर्धन के बिना तो मेरा मन कहीं भी सुख प्राप्त नहीं कर सकता। गर्गसंहिता में २ बार इस श्लोक की चर्चा है।

श्रीजी की प्रसन्नता के लिए श्यामसुन्दर ने –

गोवर्द्धनं च यमुनां प्रेषयामास भूपरि ।

(गर्गसंहिता, गोलोकखण्ड ३/३३)

स्वयं श्रीहरि ने नित्य गोलोकवासिनी यमुनाजी को धराधाम पर जाने की आज्ञा दी। यमुना को गमनोद्यत देख गंगा और विरजा दोनों उनमें विलीन हो गयीं।

तदैव विरिजा साक्षाद् गंगा ब्रह्मद्रवोद्भवा ।
द्वे नद्यौ यमुनायां तु संप्रलीने बभूवतुः ॥
परिपूर्णतमां कृष्णां तस्मात्कृष्णस्य नंदराट् ।
परिपूर्णतमस्यापि पट्टराज्ञी विदुर्जनाः ॥

(गर्गसंहिता, वृन्दावनखण्ड – ३/२,३)

कलिन्दजा के कारण ही वृन्दावन बैकुण्ठ से भी अधिक महिमामण्डित हो गया।

वैकुण्ठान्न्परोलोको न भूतो न भविष्यति ।
एकं वृन्दावनं नाम वैकुण्ठाच्च परात्परं ॥
यत्र गोवर्धनो नाम गिरिराज्ये विराजते ।
कालिन्दी निकटे यत्र पुलिनं मंगलायने ॥

(गर्गसंहिता, वृन्दावनखण्ड – १/१५, १६)

क्योंकि यमुना तट –संनिकट कुञ्ज ही राधा–माधव की पावन खेलन स्थली है। तदनन्तर विरजा व ब्रह्मद्रव का भेदन करती हुई महानदी यमुना ब्रह्माण्ड के शिरोभाग में विराजमान ब्रह्मद्रव में प्रविष्ट हुई।

ध्रुवमण्डलस्थ वैकुण्ठ होती हुई ब्रह्मलोक का लंघन कर ब्रह्ममण्डल से नीचे गिरीं और क्रमशः देवलोकों में होती हुई सुमेरु गिरि के शिखर पर वेगपूर्वक गिरीं।

अनेकों गिरि–चट्टानों का भेदन करती हुई जब मेरुगिरि से दक्षिण दिशा की ओर बढ़ीं तब यहाँ 'श्रीयमुना' गंगा से पृथक् हुईं। यहाँ से आगे मार्ग बदल गया। 'गंगा' हिमवान् गिरि पर गई और 'कृष्णा' कलिन्दशिखर पर, इसी से इनका एक नाम 'कालिन्दी' हुआ। कलिन्द गिरि से कालिन्दी अनेक देश पवित्र करती हुई खाण्डव वन या इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) आई। ब्रज के कुछ निकट आई अतः श्रीकृष्ण को पतिरूप में प्राप्त करने की इच्छा से यहाँ खाण्डववन में तप करने लगीं। पिता सूर्य ने अपनी पुत्री के लिए जल के अन्दर ही एक दिव्य गेह का निर्माण कर दिया। खाण्डववन से वेगवती कालिन्दी ब्रज की ओर बहीं। ब्रज में सर्वप्रथम "ऐंच ग्राम" में प्रवेश हुआ।

वृन्दावन समीपे च मथुरा निकटे शुभे ।

(गर्गसंहिता, वृन्दावनखण्ड –३/१६)

तब श्रीवृन्दावन–मथुरा के निकट पहुँचीं। यमुना को ब्रज में प्रवेश कराने वाला यही स्थान विशेष है। नामानुसार 'ऐंच' यमुनाजी का प्रवेशद्वार है। सम्प्रति हसनपुर भी यमुनाजी का प्रवेश द्वार है। यह कोई बड़ी बात इसलिए नहीं है क्योंकि गाँवों की स्थिति जल के प्रवाह से परिवर्तित होती रही है। ब्रज में प्रवेश करते श्रीयमुनाजी निश्चित ही प्रसन्न हुईं और प्रसन्नता की अभिव्यक्ति हँसी द्वारा ही हो सकती है अतः "हसनपुर" हुआ। गर्गसंहिता में लिखा है – जब वे ब्रज से आगे जाने लगीं तो ब्रजभूमि के वियोग से विह्वल हो, प्रेमानन्द के आँसू बहाती हुई पश्चिम दिशा की ओर प्रवाहित हुईं। ब्रज से बाहर जाने का यमुनाजी को बहुत अधिक विरह व्याप्त हुआ, जाते समय उन्होंने ब्रजभूमि को तीन बार नमन किया –

अथो व्रजाद्व्रजन्ती सा व्रजविक्षेपविह्वला ।
प्रेमानन्दाश्रुसंयुक्ता भूत्वा पश्चिमवाहिनी ॥
ततस्त्रिवारं वेगेन नत्वाऽथो व्रजमण्डले ।

(गर्गसंहिता, वृन्दावनखण्ड –३/१८,१९)

श्रीगोकुले च यमुना यूथीभूत्वातिसुन्दरी ।
श्रीकृष्णचन्द्ररासार्थं निजवासं चकार ह ॥
(गर्गसंहिता, वृन्दावनखण्ड – ३/१७)

श्रीगोकुल में आने पर श्रीयमुनाजी ने विशाखा सखी के नाम से ब्रजकिशोरियों का एक यूथ बनाकर एवं रासलीला में प्रवेश के लिए वहीं निश्चित निवास किया।

अथो व्रजाद्व्रजन्ती सा व्रजविक्षेपविह्वला ।
प्रेमानन्दाश्रुसंयुक्ता भूत्वा पश्चिमवाहिनी ॥
(गर्गसंहिता, वृन्दावनखण्ड – ३/१८)

ब्रजभूमि से आगे बढ़ने पर श्रीयमुनाजी वियोग से विह्वल हो उठीं। प्रेमानन्दाश्रुओं के साथ पश्चिम दिशा की ओर प्रवाहित हुई। तीर्थराज प्रयाग पहुँचने पर गंगा से संगम हुआ। गंगा को साथ लिए क्षीरसागर गयीं अनन्तर समुद्र यात्रा की।

हे गंगे त्वं तु धन्याऽसि सर्वब्रह्माण्डपावनी ।
कृष्णपादाब्जसंभूता सर्वलोकैकवन्दिता ॥
(गर्गसंहिता, वृन्दावनखण्ड –३/२२)

यमुना बोलीं – समस्त ब्रह्माण्डों को पवित्र करने वाली गंगे ! तुम धन्य हो। श्रीकृष्णचरणों से प्रादुर्भूत तुम सभी लोकों की वन्दनीय हो।

ऊर्ध्वं यामि हरेर्लोकं गच्छ त्वमपि हे शुभे ।
त्वत्समानं हि दिव्यं च न भूतं न भविष्यति ॥
(गर्गसंहिता, वृन्दावनखण्ड – ३/२३)

हे शुभे ! मैं तो अब यहाँ से ऊपर श्रीहरि के लोक में जा रही हूँ, तुम्हारी इच्छा हो तो तुम भी मेरे साथ चलो। हे गंगे ! तुम सर्वतीर्थमानी हो अतः मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ।

हे कृष्णे त्वं तु धन्याऽसि सर्वब्रह्माण्डपावनी ।
कृष्णवामांससंभूता परमानन्दरूपिणी ॥
परिपूर्णतमा साक्षात्सर्वलोकैकवन्दिता ।
परिपूर्णतमस्यापि श्रीकृष्णस्य महात्मनः ॥
पट्टराज्ञीं परां कृष्णे कृष्णां त्वां प्रणमाम्यहम् ।
तीर्थैर्देवैर्दुर्लभा त्वं गोलोकेऽपि च दुर्घटा ॥
अहं यास्यामि पातालं श्रीकृष्णस्याज्ञया शुभे ।
त्वद्वियोगातुराऽहं वै पानं कर्तुं न च क्षमा ॥
यूथीभूत्वा भविष्यामि श्रीव्रजे रासमण्डले ।
यत्किंचिन्मे प्रकथितं तत्क्षमस्व हरिप्रिये ॥
(गर्गसंहिता, वृन्दावनखण्ड – ३/२५-२९)

समस्त ब्रह्माण्ड को पवित्र कर देने वाली तुम धन्य हो। श्रीकृष्ण के वामाँग से प्रादुर्भूत हो। परम आनन्दस्वरूपिणी हो। साक्षात् परिपूर्णतमा हो, समस्त लोकों की एकमात्र वन्दनीय हो। साक्षात् परिपूर्णतम श्रीकृष्ण की पटरानी हो। सब प्रकार से उत्कृष्ट तुम कृष्णा को मैं प्रणाम करती हूँ। समस्त तीर्थों व देवों के लिए भी दुर्लभ हो। गोलोक में भी तुम्हारा दर्शन अत्यन्त कठिन है। मैं तो श्रीकृष्णाज्ञा से पाताल लोक में जाऊँगी। मैं तुम्हारे वियोग–भाव से अत्यन्त व्याकुल हूँ किन्तु इस समय तुम्हारे साथ चलने में असमर्थ हूँ। हाँ, मैं रासमण्डल में तुम्हारे यूथ में अवश्य ही सम्मिलित रहूँगी। हे हरिप्रिये! मैंने यदि कुछ अप्रिय कह दिया हो तो क्षमा करना।

इस प्रकार दोनों नदियाँ परस्पर एक–दूसरे को प्रणाम करके अपने–अपने गन्तव्य को चली गयीं। गंगा तो पाताल में भोगवती गंगा के नाम से प्रसिद्ध हुई एवं वेगवती श्रीयमुना सप्तग्राम मण्डल का भेदन करते हुए लोकालोक पर्वत पर गयीं। वहाँ से ऊर्ध्वगमन करते हुए स्वर्गलोक और फिर क्रम से जन, तप और महर लोक को पार करते हुए ब्रह्मलोक पहुँचीं। ब्रह्माण्ड–शिखर से होती हुई नदियों में श्रेष्ठ यमुना अपनी यात्रा पूर्ण करते हुए नित्य धाम गोलोक में आ गयीं – **श्रीकृष्णगोलोकमारुरोह सरिद्वरा ॥** (गर्गसंहिता, वृन्दावनखण्ड – ३/३६)

जिस प्रकार अवध के उत्तर में सरयू है, उसी प्रकार श्रीवृन्दावन में चहुँ ओर कङ्कणाकार श्रीयमुनाजी प्रवाहमान हैं।

रंगनाना तरंगें सुपुंजे ।
कमल–कुल लब्ध अलि करत गुंजे ॥
(महावाणी सिद्धान्त सुख पद स.३)

राधा रुपी प्रेम लक्ष्मी का निवास भी यहाँ कलिन्द–नन्दिनी के कूल पर है। जो अपने जनों के मन में यावक युत श्रीपद प्रस्थापित कर देती हैं। ये प्रेमलक्ष्मी श्रीराधा अन्यत्र नहीं मात्र तपनतनया के तट पर ही मिलेंगी।

यमुनाराधक 'युगलसरकार'

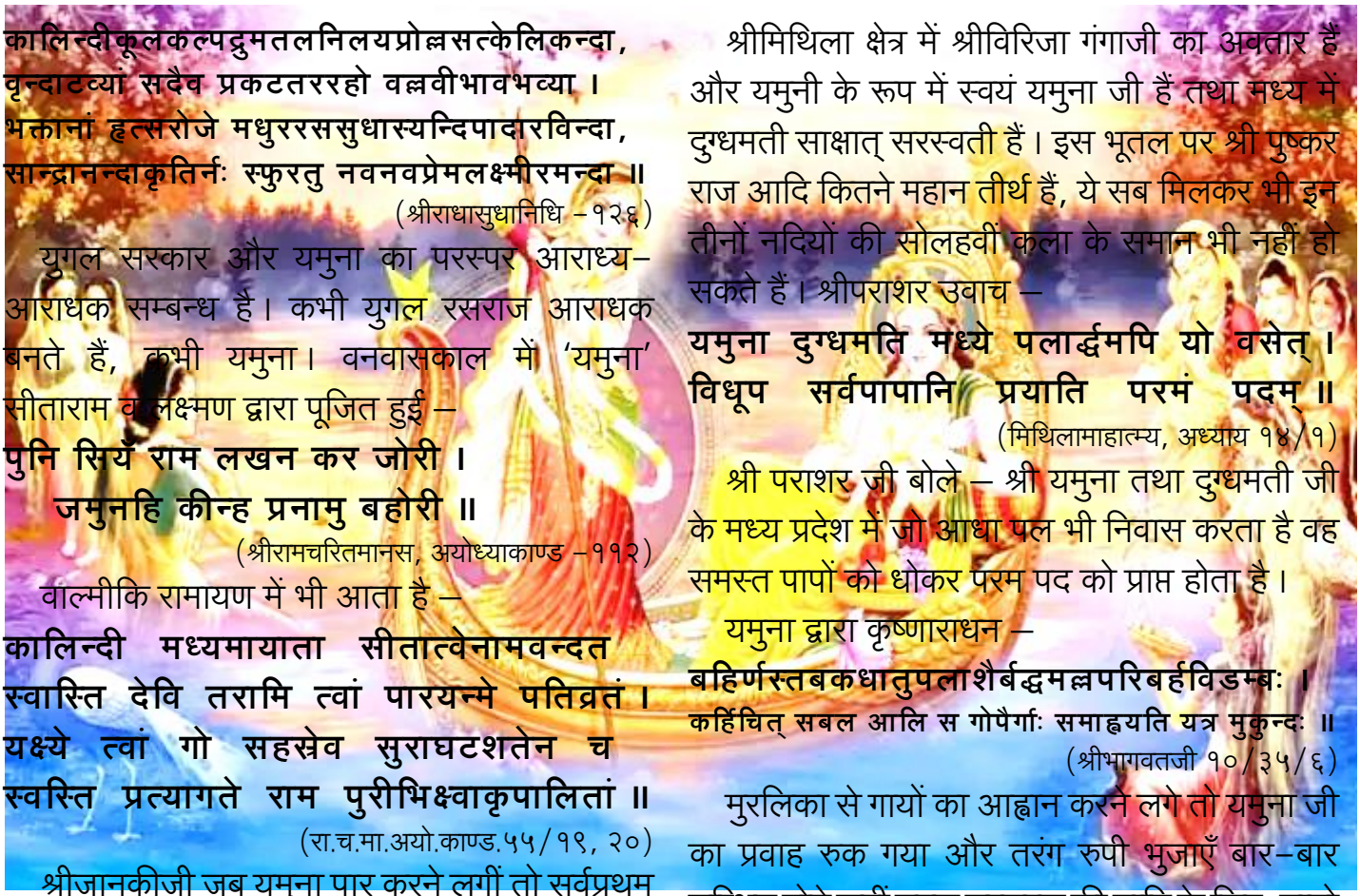

कालिन्दीकूलकल्पद्रुमतलनिलयप्रोल्लसत्केलिकन्दा,
वृन्दाटव्यां सदैव प्रकटतररहो वल्लवीभावभव्या ।
भक्तानां हृत्सरोजे मधुररससुधास्यन्दिपादारविन्दा,
सान्द्रानन्दाकृतिर्नः स्फुरतु नवनवप्रेमलक्ष्मीरमन्दा ॥

(श्रीराधासुधानिधि –१२६)

युगल सरकार और यमुना का परस्पर आराध्य–आराधक सम्बन्ध है। कभी युगल रसराज आराधक बनते हैं, कभी यमुना। वनवासकाल में 'यमुना' सीताराम व लक्ष्मण द्वारा पूजित हुई –

पुनि सियँ राम लखन कर जोरी ।
जमुनहि कीन्ह प्रनामु बहोरी ॥

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड –११२)

वाल्मीकि रामायण में भी आता है –

कालिन्दी मध्यमायाता सीतात्वेनामवन्दत
स्वास्ति देवि तरामि त्वां पारयन्मे पतिव्रतं ।
यक्ष्ये त्वां गो सहस्रेव सुराघटशतेन च
स्वस्ति प्रत्यागते राम पुरीभिक्ष्वाकृपालितां ॥

(रा.च.मा.अयो.काण्ड.५५/१९, २०)

श्रीजानकीजी जब यमुना पार करने लगीं तो सर्वप्रथम यमुना–पूजन किया, स्तवन करते हुए बोलीं – हे यमुने ! इक्ष्वाकु से पालित इस अयोध्या में मेरे स्वामी यदि सुरक्षित लौट आए तो मैं सहस्रों गायों और सैकड़ों देवदुर्लभ पदार्थों से आपका पुनः पूजन करूँगी। अपना प्रणपूर्ण करने हेतु सीताजी ने ब्रज (अशोक वन) में यमुना–पूजन व निवास किया।

ब्रजभक्ति विलासानुसार –

सितवास वृक्षश्रेष्ठ सौख्य रूपाय ते नमः ।

श्रीसीताजी की इस यमुना भक्ति से प्रसन्न होकर श्रीयमुनाजी ने मिथिला में भी अवतार लिया।

गंगावतार विरजा यमुनी यमुना स्वयम् ।
येषा दुग्धमती मध्ये स्वयमेव सरस्वती ॥
पुष्करादीनि तीर्थाणि यानि सन्तीह भूतले ।
एतासां तु त्रियंमानां कलां नांहन्ति षोडशीम् ॥

(श्रीमिथिलामाहात्म्य ३/२७, २८)

श्रीमिथिला क्षेत्र में श्रीविरिजा गंगाजी का अवतार हैं और यमुनी के रूप में स्वयं यमुना जी हैं तथा मध्य में दुग्धमती साक्षात् सरस्वती हैं। इस भूतल पर श्री पुष्कर राज आदि कितने महान तीर्थ हैं, ये सब मिलकर भी इन तीनों नदियों की सोलहवीं कला के समान भी नहीं हो सकते हैं। श्रीपराशर उवाच –

यमुना दुग्धमति मध्ये पलार्द्धमपि यो वसेत् ।
विधूप सर्वपापानि प्रयाति परमं पदम् ॥

(मिथिलामाहात्म्य, अध्याय १४/१)

श्री पराशर जी बोले – श्री यमुना तथा दुग्धमती जी के मध्य प्रदेश में जो आधा पल भी निवास करता है वह समस्त पापों को धोकर परम पद को प्राप्त होता है।

यमुना द्वारा कृष्णाराधन –

बर्हिर्णस्तबकधातुपलाशैर्बद्धमल्लपरिबर्हविडम्बः ।
कर्हिचित् सबल आलि स गोपैर्गाः समाह्वयति यत्र मुकुन्दः ॥

(श्रीभागवतजी १०/३५/६)

मुरलिका से गायों का आह्वान करने लगे तो यमुना जी का प्रवाह रुक गया और तरंग रुपी भुजाएँ बार–बार उत्थित होने लगीं युगल चरणरज की प्राप्ति के लिए, मानो चरणरज की याचना कर रही हैं, तत्क्षण शीतल–मन्द–सुगन्ध समीरण ने वह रज लाकर यमुना को दी, तत्क्षण तरंगे भी तिरोहित हो गईं।

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीतमावर्त–
लक्षितमनोभवभग्नवेगाः ।
आलिङ्गनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारे –
गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः ॥

(श्रीभागवतजी १०/२१/१५)

वेणुविहारी के वेणुनिनाद से नीली–कल्लोलनी स्तब्धित हो गयी और क्षण–२ में नव–नव आवर्तों का निर्माण करने लगीं।

ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि कालिन्दी कृष्ण का आलिंगन चाहती थीं। श्रीकृष्णका आलिंगन करने के लिए तरंग रुपी भुजाओं के द्वारा कमल कुसुम का उपहार लेकर कृष्णपदों में अर्पित कर रही हैं, यह है कालिन्दी

द्वारा कृष्णाराधन। इतना प्रगाढ़ प्रेम है तभी तो श्रीकृष्णके पूर्व ही पृथ्वी पर आ गयीं। ब्रज कोकिल **श्री नन्ददास जी** कहते हैं।

नेह के कारण यमुना जी प्रथम आईं।

श्री भगवान् से पहले श्री यमुना जी का अवनि पर अवतरण हुआ। भक्तों के लिए आपका यह अवतरण आपकी अतिशय कृपा है अतः समस्त कृष्ण भक्तों, ब्रज के भक्तों का परम कर्तव्य है, यमुना–परिचर्या।

भक्तन पै करी कृपा श्री यमुना जू ऐसी।
छांड़ि निजधाम विश्राम भूतल कियौ।
प्रकट लीला दिखाई हो तैसी॥

कृष्णकाल में यमुना जल इतना शुद्ध था कि ग्वाल–बाल उस स्वादु जल को बिना क्षुधा–तर्षा के पी जाते थे और उसके आगे दूध–दही को भी नीरस कहते थे।

तत्र गाः पाययित्वापः सुमृष्टाः शीतलाः शिवाः।
ततो नृप स्वयं गोपाः कामं स्वादु पपुर्जलम्॥

(श्रीभागवतजी १०/२२/३७)

बड़ा शुद्ध, उज्ज्वल, शीतल, मंगलमय यमुना जल था। इस जल का पान करने के बाद औषधियों की आवश्यकता नहीं पड़ती थी।

सरिता इतनी शुद्ध होनी चाहिए कि नर और सुर ही नहीं अपितु भगवान् भी उसके शुद्ध, स्वादु जल की प्रशंसा करें।

चले ससीय मुदित दोउ भाई।
रबितनुजा कइ करत बड़ाई॥

(रा.च.मा.अयो.काण्ड – ११२)

भगवान् श्रीरामने सरयूजी की भी प्रशंसा की है।

नदी पुनीत अमित महिमा अति।
कहि न सकहि शारदा विमलमति॥

(रा.च.मा.बाल काण्ड – ३५)

विद्या की देवी शारदा भी सरयू अथवा यमुना की शुद्धि एवं स्वच्छता का स्वल्प सा वर्णन नहीं कर सकतीं।

फिर अन्य देवों की तो चर्चा ही क्यों करें।

दरस परस मज्जन अरु पाना।
हरहिं पाप कहे वेद पुराना॥

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड – ३५)

जिसके दर्शन, आचमन अथवा पान से समस्त पापों का भंजन हो जाता है। स्नान से दुर्लभ भक्ति की प्राप्ति हो जाती है। यह यमुना केवल सरिता स्वरूप नहीं है। भगवान् की कृपा का स्वरूप है।

वहन्ति काम श्रियां हरेः, मुदा कृपा रूपिणीं।
विशुद्ध भक्तितमुज्वलां, परे रसात्मिकां विदुः॥

स्वर्ग का अमृत तो लौकिक है और श्री यमुना जी का जल अलौकिक अमृत है।

सुधां श्रुतीं अलौकिकीं, परेश वर्ष रूपिणीं।
भजे कलिन्द नन्दनी, दुरन्त मोह भंजनी॥

(श्रीहरिवंशमहाप्रभु विरचित यमुनाष्टक)

यमुना की पवित्रता समस्त लोकों में विख्यात है।

लोक समस्त विदित अति पावनि।

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड – ३५)

इन्द्र, सूर्य, चंद्र, वरुण, समस्त सुरगण यमुना जी की वन्दना करने आते हैं– **'सुरेन्द्रनन्द वन्दिता, रसादधिष्ठितेवने।'** स्वयं सूर्य ने कालिन्दी के लिए यमुना जल में निवासार्थ भवन बनवाया। जब तक उन्हें कृष्ण दर्शन नहीं हुए तब तक उन्होंने उसी भवन में निवास किया। यमुना–जल में निवास करने से अतिशीघ्र कृष्ण–प्राप्ति हो गयी श्रीकालिन्दी को।

श्रीनन्ददास जी का कथन है कि सरिताओं में सर्वश्रेष्ठ श्रीयमुना जी हैं –

सरिता रुचे तो बसो श्री यमुना तट।
सकल मनोरथ पूरण काम॥

कृष्ण नाम जब ते सुन्यौ री आली,भूली भवन हों तो बावरी भई री।
भरि भरि आवैं नैन, चितहूँ न परै चैन,
मुखहू न आवैं बैन, तन की दसा कछु और भई री।
जेतक नेम धर्मकीने री मैं बहु बिधि,
अंग अंग भई हौं तौ श्रवनमयी री।
'नंददास' जाके श्रवन सुनत यह गति,
माधुरी मूरति कैंधो कैसी भई री॥

श्रीगह्वरवननिष्ठ संत श्रीरणछोड़दासजी

ग्रन्थ 'गह्वर-प्रदीप' से संकलित

संवत् १८६७ में फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को धौलपुर राज्य के विरोध नामक ग्राम (जो मुचुकुन्द गुफा के पास है) में श्रीरणछोड़दासजी (सिद्धेश्वर महाराज) का जन्म हुआ था, इनकी माता सुमित्रा देवी और पिता श्रीबलरामजी उच्च कुल के सनाढ्य ब्राह्मण थे। बालक की जन्मपत्री और हस्तरेखाओं को देखकर पिता जान गये थे कि त्यागमूर्ति भगवद्भक्त का घर में जन्म हुआ है। ब्राह्मणोचित संस्कार के पश्चात् विवाह-बन्धन में फँसने से पूर्व श्रीसालिगरामजी को साथ ले माता-पिता से बिना पूछे अचानक घर से चल दिए, उस समय इनकी अवस्था ११ वर्ष थी। घूमते-फिरते हुए ये उदयपुर राज्य के तुलसाना नामक ग्राम में पहुँचे। कुछ दिन यहाँ निवास करने के पश्चात् प्रसिद्ध महन्त श्रीघनश्यामशरणदेवजी से गुरु-दीक्षा ली और चित्त लगाकर सेवा भाव में रत हुए। इनके दादागुरु श्रीगोविन्दशरणदेवजी भी उन दिनों विद्यमान थे, उनसे इन्होंने ब्रजयात्रा का विचार प्रकट किया तो उन्होंने कहा – कुछ दिन ठहरो, हमारे निकुंजवास का समय निकट आ गया है, भस्मी साथ लेकर जाना और निधिवन में विराजमान कर देना। आज्ञा शिरोधार्य करके कुछ दिन बाद भस्मी सहित वृन्दावन पहुँचे और भस्मी को यथास्थान स्थापन करने के पश्चात् ये १० वर्ष तक वृन्दावन में निवास करते रहे। वहाँ पर विद्वज्जन मुकुटमणि श्रीनृसिंहदासजीमहाराज, श्रीनन्दकिशोरजी एवं श्रीनन्दकुमारदेवजी से विद्याध्ययन किया; यही तीनों वैभव सम्पन्न विज्ञानमूर्ति इनके विद्यागुरु थे। विद्याध्ययन के पश्चात् करहला नामक ग्राम (जो नन्दग्राम से ३ कोस की दूरी पर अग्निकोण में है) में निवास करके विद्या के मनन और भगवद्भजन में तल्लीन रहे। वहाँ से चलकर श्रीनन्दग्राम में निवास किया और भगवल्लीलाओं पर विचार करते रहे, पीछे श्रीबरसाना (श्रीवृषभानुपुर) में १२ वर्षों तक ठहरे, यहाँ अध्ययन और मनन से निवृत्ति लेकर सेवाभाव की ओर प्रवृत्त हुए। श्रीलाड़लीजी के भण्डार की सेवा का भार आपने ग्रहण किया। संवत् १९३९ तक इस सेवा कार्य को तन-मन से करते रहे, पश्चात् गह्वरवनकुटी में ३४ वर्ष तक श्रीप्रियाजी का ध्यान करते हुए दया, भक्ति और सेवाभाव का उपदेश भक्तजनों को देते हुए संवत् १९७२ में १०५ वर्ष की अवस्था पाकर निकुंजवास किया। उस समय का वृत्तान्त पंडित रामप्रसादजी रचित 'भक्त नामावली' में लिखा है –

"निकुञ्जौ कोयनात् प्रथम दिवसे श्रूयत इदं।
हरे साक्षात् कारोऽभवद् मित मारो दित रुचः ॥
तुलस्या आसन्नेऽद्भुत परम शोभालय इह ॥
भ्रम द्वेवे शाद्यैरपि न सुलभोऽहो य उदितः ॥"

अर्थात् सुना है कि निकुंजवास से एक दिवस पूर्व तुलसीजी के समीपवर्ती स्थान में अनन्त कोटि कामदेव की छबि वाले श्रीहरि का आपको साक्षात्कार हुआ जो इन्द्रादिक को भी दुर्लभ है। श्रीयमुनावल्लभगोस्वामी रचित भक्तमाल में लिखा है –

"श्रीरणछोड़दासजी आश अति अमित करी निम्बार्क पद।
गह्वर बन अति सघन मगन मन तहाँ निवासी ॥
अटल प्रबल विश्वास भक्ति भावुक सुख राशी।
पुरुष सिंह सम भाव सार सिद्धान्त प्रकाशी ॥
दर्श दिये साक्षात् जिन श्री लाड़ली अनल्प मुद ॥"

विद्वत्ता और साधुता

श्रीरणछोड़दासजीमहाराज बाल ब्रह्मचारी और बड़े तपोमूर्ति महात्मा थे, इन्होंने घर पर साधारण पठन-पाठन का बोध किया था। ११ वर्ष की अवस्था में घर छोड़कर थोड़े दिन तो पूज्य गुरु और परम पूज्य दादागुरु की सेवा में रहे और उनसे साधु-भावों की शिक्षा पायी, पीछे वृन्दावन में रहकर व्याकरण पढ़ा, साथ ही श्रीमद्भागवत, श्रीभगवद्गीता आदि धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन किया। वृन्दावन गये थोड़े ही दिन हुए थे कि इनके पिता श्रीबलरामजी खोज लगाते वहाँ पहुँच गये और एक दिन इनको पहचान लिया। पिता ने वात्सल्यभाव से पुत्र को समझाया। माता-पिता के

वियोग जनित दुःख की करुण कहानी और अपने वृद्धावस्था के कष्टों का वर्णन करते हुए घर चलने के लिए विवश करने लगे, पुत्र का स्वाभाविक हृदय भी माता–पिता की व्यथा सुनकर द्रवित होने लगा। परन्तु अपने अध्ययन और साधुता के भावों को स्मरण करके उस समय युक्तिपूर्ण भाव से यह सूझ पड़ा कि उन दिनों चौके चूल्हे और कच्चे–पक्के भोजन का जो ब्राह्मणों में अत्यधिक बन्धन था – अन्य जाति का छुआ भोजन कर लेने पर जाति च्युत दण्ड मिलता था। ये पिता से कहने लगे कि मैं आपकी सेवा में इस कारण नहीं चल सकता क्योंकि साधु–संगत में रहने और मधुकरीव्रत–ग्रहण करने से यदि जाति वालों ने इस बात पर आक्षेप उठाया तो मेरे चलने से उल्टा आपको क्लेश होगा। ऐसी दशा में विद्याध्ययन और साधुता से भी आप मुझे क्यों वंचित रखते हैं ? पिता ने कहा कि विद्वत्ता और साधुता बड़े सौभाग्य से मिलती है, इसलिए साधु ही रहो, पर ऐसे साधु बनना जिससे कि हमारा और दूसरों का कल्याण हो; ऐसा सुनकर श्रद्धाभाव से पुत्र ने सिर नवा दिया और पिता ने प्रेमभाव से हाथ रखकर वहाँ से विदा ली।

दस वर्ष तक श्रीवृन्दावन में विद्याध्ययन करने से इनको अपने धर्म–ग्रन्थों का अच्छा बोध हो गया था। २५ वर्ष की पूर्ण युवावस्था, शरीर पर ब्रह्मचर्य का तेज और विद्याबल से इनकी कान्ति का अधिक प्रकाश दीख पड़ता था; उस समय इन्होंने नगर का निवास छोड़कर करहला नामक छोटे–से ग्राम के एक निर्जन स्थान में साधोचित तपश्चर्या करके मन को एकाग्र किया।

अनूप नगर, जिला बुलन्दशहर में गंगा–स्नान के मेले पर स्वामीदयानन्दसरस्वती से इनकी भेंट हुई। दो विद्वान् साधुओं की शास्त्र–चर्चा सुनने के लिए सैकड़ों विद्या–धर्मप्रेमियों का जमघट लग गया। इस शास्त्रार्थ में स्वामीजी को महात्माजी से यह कहना पड़ा कि आपने अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का पूर्ण अध्ययन और मनन किया है, इसी कारण अपने पक्ष–समर्थन में आप अविचल हैं। साथ ही उन्होंने एक रुपया श्रीसर्वेश्वरजी को भेंट करके आपके दर्शन और मिलन पर प्रसन्नता प्रकट की।

<u>सेवा भाव और सहनशीलता</u>

विद्या और मन की एकाग्रता पाकर ये सेवाभाव की ओर प्रवृत्त हुए। बरसाने में भी श्रीलाड़लीजी के भण्डार की बड़े परिश्रम से इन्होंने सेवा की। श्रीजी के शयन के पश्चात् नित्य रात्रि में बरसाने से १२ कोस दूर वृन्दावन पहुँचते और प्रातः श्रीरङ्गजी के बगीचे से पुष्प लेकर बरसाना में मंगला आरती के समय लौटते। मन्दिर में सेवा का क्रम किस प्रकार हो ? मंगला से शयन पर्यन्त किस श्रद्धा और विधि के साथ सेवा की जाए, इन सोच–विचारों के साथ उत्तमोत्तम विधियों को काम में लाते और सेवा करने वालों को समझाते। सेवा के इनके वे क्रम और बीड़ी (पान) प्रचार, जो इनके समय में प्रचलित हुए, श्रीजी के मन्दिर में सदा इनकी स्मृति दिलाते रहेंगे।

एक बार महाराजजी गह्वरवन में गायों के स्थान पर बुहारी लगा रहे थे; उस समय चित्रकूटनिवासी रामानुज–सम्प्रदाय के एक साधु इनकी प्रशंसा सुनकर परीक्षा लेने आये और इनको बुहारी लगाने की धुन में देखकर निन्दा करते हुए बड़बड़ाने लगा किन्तु ये अपने कार्य में ऐसे तल्लीन थे कि उधर कोई ध्यान नहीं दिया। बुहारी से निवृत्त होकर इन्होंने उस साधु का बड़े आदर–भाव से स्वागत करते हुए कहा कि निन्दा के योग्य तो यह शरीर है ही, अब आप कोई सेवा कार्य बतलाइये। इस सहनशीलता को देखकर वह साधु गद्गद हो गया और गले मिलकर इनसे कहने लगा कि जैसी मैंने आपकी प्रशंसा सुनी थी, उससे कहीं अधिक आकर अनुभव की।

किसी अन्यत्र स्थान से आये हुए एक साधु ने जानबूझकर समीपवर्ती तुलसी के थाँवले पर थूककर इनकी परीक्षा लेनी चाही। साधु के इस अशिष्ट व्यवहार पर इन्होंने कुछ भी खेद–प्रकाश नहीं किया। झट से उठकर जल और गोबर–मिट्टी से थाँवले को शुद्ध किया और बड़े प्रेमभाव से साधु का स्वागत–सत्कार किया।

ऐसे निरभिमानी शान्त स्वभाव महात्मा का सत्संग पाकर वह साधु बड़ा सन्तुष्ट होकर लौटा।

वृन्दावन की दतियावाली कुञ्ज में श्रीमहाराजजी एक बार रासलीला देखने गये, वहाँ ये दूर खड़े हुए थे, इनके शिष्यों की दृष्टि पड़ी तो उन्होंने सिंहासन के पीछे खड़े हुए दो साधुओं को हटाकर महाराजजी के लिए जगह की और उन्हें वहाँ बुला लाये। उन दोनों साधुओं ने उस समय तो कुछ नहीं कहा किन्तु एक दिन बरसाने जाकर श्रीजी के मन्दिर की परिक्रमा में इनके ऊपर लाठी प्रहार के द्वारा बदला लिया। लोगों ने उन साधुओं को पकड़कर मार–पीट करना चाहा परन्तु आपने उनको छुड़ाकर नम्रता के बर्ताव का उपदेश दिया; इस शीलभाव को देखकर दोनों साधु लज्जित होकर इनके पाँव पर गिर पड़े।

भण्डार का दायित्वपूर्ण कार्य श्रीमहाराजजी के हाथ में होने से किसी के यहाँ प्रसाद पहुँचने में त्रुटि हो जाना स्वाभाविक था। एकबार श्रीलाड़लीजी के भण्डार में बर्तन पहुँचाने वाले कुम्हार ने समय पर महाप्रसाद न मिलने से क्रुद्ध होकर इन पर मूँठ का प्रयोग कराया, जो उल्टा उसके लिए ही हानिकारक हुआ, महात्माजी ने उससे सहानुभूति प्रकट की; यह देखकर कुम्हार ने इनके चरणों में गिरकर क्षमा माँगी।

बरसाने के दानबिहारी के मन्दिर में रहने वाले काशी निवासी एक विद्वान ने कई कारणों से क्रोधित होकर इनके ऊपर मारण–मन्त्र का प्रयोग किया, जो स्वयं उसके लिए दुःखप्रद सिद्ध हुआ। महात्माजी ने सुना तो उस विद्वान से कहा कि मेरे द्वारा सेवा में कोई त्रुटि हो गयी थी तो आपको प्रकट कर देना चाहिए था; इस सहनशीलता को देखकर विद्वान पंडितजी क्षमाप्रार्थी हुए।

द्वेषवश एकबार एक साधु ने किसी दूसरे साधु के हाथ श्रीजी का प्रसाद बताते हुए विष मिश्रित पेड़े सायंकाल इनके पास भेजे। उनको पा लेने से इनको उल्टी (वमन) हो गयी और अचेत हो गये। ऐसी दशा में श्रीलाड़लीजी ने दर्शन देकर इनके सिर पर अपना हाथ रखा तथा इन्हें सान्त्वना दी। महात्माजी उस साधु को जान गये थे, इस विष का बदला लेने के लिए इनसे कई शिष्यों ने आग्रह किया, परन्तु आपने उसे क्षमा करना ही उचित समझा।

<u>ब्रजभूमि के प्रति प्रेम</u>

एकबार आपके गुरु श्रीघनश्यामशरणदेवजी ने गुरुद्वारा 'तुलसाना' में आने के लिए आपको पत्र दिया। वे अपने सामने ही इनको अपनी गद्दी पर बिठाना चाहते थे। उनके मनोभावों को जानकर भक्तिभाव के साथ क्षमा प्रार्थना करते हुए इन्होंने ब्रजभूमि की महिमा इस प्रकार लिख भेजी –

तच्छास्त्रं मम कर्ण मूलमपिनं स्वप्नेऽपियाया दहो।
श्रीवृन्दाविपिनस्य यत्र महिमा नात्यद्भुतः श्रूयते ॥
तेमे दृष्टि पथं न यान्तु नितरां संभाष्यतां प्राप्नयुः।
श्रीवृन्दावन वैभवे श्रुतिगतेऽप्युल्लासिनो नोखलाः ॥१॥

सा मे न माता स च मे पिता नो।
स मे न बन्धुः स च मे सखा नो ॥
स मे न मित्रं स च मे गुरुर्नो।
यो मे न वृन्दावन वास मादिशेत् ॥२॥
मिलन्तु चिन्तामणि कोटि कोट्यः।
स्वयं बहिर्दृष्टि मुपैतुवाहरिः ॥
तथापि वृन्दावन धूलि धूसरं।
न देहमनयत्र कदापि यातु मे ॥३॥
छिद्येत खण्डश इदं यदि मे शरीरं।
घोर विपद् विततयो यदि वा पतन्तु ॥
हा हन्त हन्त न तथापि कदापि भूयाद्।
वृन्दावना दितर तुच्छपदे यियासा ॥४॥

यद्यपि ब्रजभूमि के प्रति आपने अपना ऐसा अगाध प्रेम और निश्चल भावना स्पष्ट रूप में प्रकट कर दी, परन्तु थोड़े दिन पीछे ही गुरुचरण–सेवा का स्मरण आते ही ये अचानक ही तुलसाना पहुँचे और श्रद्धा–भक्ति के साथ गुरु–सेवा में तल्लीन हुए। कुछ समय पीछे एक दिन दोपहर की कड़ी धूप में जब गुरुजी आराम कर रहे थे और ये उनके शरीर पर पंखे हवा कर रहे थे, ब्रज की याद आ जाने पर इनकी आँखों से प्रेमाश्रु निकलकर लेटे हुए गुरुजी के पृष्ठ भाग पर पड़े। गुरु महाराज उसी समय ताड़ गये, श्रीरासबिहारी भगवान् की लीलाभूमि का

अतिशय प्रेम देखकर प्रसन्नचित्त होकर बोले – हम तुम्हारी इस सेवा से बहुत सन्तुष्ट हैं, अब हम चाहते हैं कि तुम ब्रजभूमि में ही जाकर निवास करो । तब ये तुलसाना से लौट आये । ब्रजभूमि में ऐसा कोई गाँव न था, जो आपने न देखा हो और जहाँ के ब्रजवासी आपसे परिचित न हों ।

आकृति और स्वभाव

श्रीमहाराज का शरीर लम्बा, सुडौल और सुदृढ़ था, गौरवर्ण, आजानबाहु एवं विशाल ललाट था; इनके मस्तक और शरीर पर ब्रह्मचर्य का तेज झलकता था । सिर पर घूँघर वारे बाल, मोटी–मोटी आँखें तथा गले में तुलसीजी की कंठी शोभा देती थी । व्यायाम के नित्य अभ्यास से बड़े शक्तिशाली प्रतीत होते थे । इनकी मृदु मुस्कान दर्शनार्थियों के मन को हरणकर आनन्दित कर देती थी, इनका स्वभाव बड़ा दयालु और कोमल था । किसी पर क्रुद्ध होना तो ये जानते ही नहीं थे । दूसरे के दुःख–दर्द को देखकर दयार्द्र हो जाते थे । भूत–प्रेतादि रोग की व्याधियों से व्यथित स्त्री–पुरुष जब आपकी सेवा में लाये जाते थे तो इनका कोमल हृदय उनके शरीर की ऐंठन और दुःखद दशा को देख नहीं सकता था, उनकी व्याधि के दूर करने का ये तुरन्त ही उपाय करते थे ।

दिलावर सिंह नाम के एक भक्त को किसी विषम अपराध पर फाँसी का दण्ड मिला था । महात्माजी ने देखा कि वह निरपराध फँसा है । उसके भाइयों ने ही उसके विरुद्ध द्वेषवश झूठा अपराध सिद्ध कराया है । आपने अपनी दयादृष्टि से उसको फाँसी से बचा लिया, जिसका वह सदा कृतज्ञ रहा ।

एक बार गुरु पूर्णिमा पर आप गिरिराजजी पधारे । वहाँ आपके एक भक्त कन्हैया नाई ने अपनी कन्या के विवाह की छाक आपकी सेवा में अर्पित की । इनके साथ में और भी बहुत से साधु थे, उन सबके लिए वह छाक पर्याप्त नहीं थी । संकेत पाते ही एक सेठ ने लड्डू–पूड़ी तैयार करा दिए, जो उस छाक से कहीं उत्तम भोजन था, पर आपने अपने भक्त की छाक को ही बड़े प्रेम से पाया ।

सादगी और गौसेवा

साधुता और परदुःख हरण की चर्चा से ब्रज में आपकी बड़ी प्रसिद्धि हो चुकी थी, किन्तु आप इतनी सादगी और सीधेपन से रहते थे कि आरम्भ में इनसे मिलने वाले को एकाएक यह ज्ञान नहीं हो सकता था कि ये वही प्रख्यात महात्मा हैं । श्रीजी के भोग के अनेक व्यंजनों का महाप्रसाद प्रस्तुत होने पर भी आप प्रायः मधुकरी का ही सेवन करते थे ।

घण्टों तक आप गायों के स्थान में बुहारी लगाते थे । मोटे रजकण को छलने से छान–छानकर गऊ के स्थान में रजकण बिछाते और उन पर स्वयं लेटकर देखते कि रजकण मोटे तो नहीं रह गये हैं । गायों को आप बड़े ही प्रेम से पुचकारते, उनके शरीर को बार–बार पोंछते और उनके मुख को हाथ में लेकर गद्गद् हो जाते । भक्तजन खड़े होकर इस दृश्य को देखा करते थे । कोई आपके चरणस्पर्श करता तो झट छुड़ाने का प्रयत्न करते और अपने को सबका सेवक और दास बताते, मान–बड़ाई से दूर भागते और प्रायः कहा करते थे –

प्रतिष्ठा सूकरी विष्ठा गौरवं नरक रौरवम्,
अभिमानं सुरापानं त्रीणित्यक्त्वा सुखी भवेत् ।
जाति विद्या महत्वंच रूप यौवन मेव च,
वर्जिते प्रयत्नेन पंचैते भक्ति कंटकः ॥

एकबार आपका एक भक्त फोटोग्राफर को साथ लेकर आया और चित्र लेना चाहा, पर आपने इस बात को स्वीकार नहीं किया और कहने लगे कि चित्र तो हृदय में चित्रित होना चाहिए, चित्र ले भी लिया और भावना न रही, तो उससे क्या लाभ ?

आप प्रायः पैदल यात्रा किया करते थे । सवारी–गाड़ी में दयावश यों नहीं बैठते थे कि बैलों को कष्ट होगा । आपने रेल में भी कभी यात्रा नहीं की । आप अपने नित्य क्रम को रेल के समय से मिलाने में अड़चन समझते थे ।

आप गायों का गोबर स्वयं थापने बैठ जाते थे, साथ ही सत्संग–चर्चा चलती रहती थी । उस समय वे इतने तल्लीन हो जाते थे कि बिना हाथ धोये हाथों से ही प्रसादी पाने को उद्यत हो जाते और याद दिलाने पर

चेतसे में आते और हाथों को शुद्ध करते। कभी–कभी शौच से निवृत्त होने पर उन्हें हस्त–पाद प्रक्षालन का भी ध्यान नहीं रहता था।

दिव्य दृष्टि

दूसरे के मन की बात को और चित्त में उठी हुई शंकाओं को जानते हुए भी भोलेपन में अपने को छुपाये रखते थे और प्रसंगवश उन बातों तथा शंकाओं का समाधान ऐसे ढंग से करते थे कि सुनने वालों को उनका दिव्य ज्ञान आश्चर्य में नहीं डालता था। अपने प्रश्न और भावों को बिना प्रकट किये ही सत्संग–चर्चा में उन प्रश्नों व भावों का समुचित उत्तर पाकर लोग तृप्त एवं आनन्दित होकर लौटते थे।

एक दिन इनके परम शिष्य श्रीकिशोरीदासजी भंडारी मथुरा में श्रीगोपालजी की पोशाक के लिए कपड़ा लेने गये थे। जो कपड़ा वह लाये थे, उसमें से आधा श्रीजी की पोशाक के लिए भण्डार में छोड़ आये। उस शेष कपड़े को हाथ में लेकर श्रीमहाराजजी ने सीधे स्वभाव से कहा कि इसका आधा भाग भी इसमें शामिल करो, जिससे दो पोशाक बनेगी।

डॉक्टर गंगाबख्शजी एक बार कोसी से बरसाना जा रहे थे। रास्ते में नन्दग्राम के पास उन्हें एक ठग मिला। वह उन्हें मार्ग भुलाकर जंगल में ले गया और लूटना ही चाहता था कि आकस्मिक गुरु कृपा से बच गये। जब गुरुद्वारे पहुँचे तो श्रीगुरुमहाराज ने प्रसंग ही प्रसंग में उस ठग की सब बात कह सुनाई।

शिष्यगण

महाराजजी के मुख्य ४२ विरक्त शिष्यों में से कुछ ही का संक्षिप्त वर्णन कर रहे हैं –

श्रीलाडलीदासजी – ये चतुर्वेदी ब्राह्मण थे। मथुरा में बहुत दिन तक पुलिस ऑफीसर रहे, श्रीमहाराजजी का सत्संग पाकर ये उनकी शरण में आये और दीक्षा लेकर घर–बार छोड़ दिया, केवल एक कौपीन लगाये, तूँबी और बंसी हाथ में लिए ये ब्रज में भ्रमण किया करते थे। भूख–प्यास की इनको परवाह नहीं थी। पाछोल और कनवारा की कदमखण्डी, जहाँ के गाँवों में अधिकांश गूजर जाति के चोरी–पेशा लोग रहते थे, त्याग और वैराग्य को देखकर इनके सदुपदेश से सद्धर्म की ओर प्रवृत्त हुए तथा चोरी छोड़कर उन्होंने कंठी–तिलक धारण कर लिया। अब इनका निकुंजवास हो चुका है।

श्रीवृन्दावनदासजी – कायस्थ कुल में आपका जन्म हुआ था, महाराजजी से गुरुदीक्षा लेकर ये विरक्त हो गये, आप सदा ब्रजभूमि में विचरा करते थे। अपने प्रभावशाली उपदेशों से बहुतों को इन्होंने वैष्णवधर्म की ओर प्रवृत्त किया। कई लोग इन्हीं के सत्संग और सदुपदेश से विरक्त हो गये और उन्होंने ब्रज में साधुता की ख्याति पायी।

श्रीसर्वेश्वरदासजी – इन्होंने ब्रज में कई कुएँ और तालाब बनवाये। ये बड़े विरक्त महात्मा और विद्वान् थे। पाछोल की कदमखंडी में ये रहते थे।

श्रीकिशोरीदासजी – यही श्रीभण्डारीजी महाराज हैं, जो श्रीमहाराज के स्थानापन्न हैं, इनका पूर्ण परिचय आगे दिया गया है।

इनके अतिरिक्त श्रीकान्हड़दासजी करहला में भजन करते थे। श्रीललितादासजी गह्वर कुण्ड पर रहते थे। श्रीमंगलदासजी अब गह्वर कुण्ड पर विराजमान हैं। श्रीललितादासजी कायस्थ बावड़ी पर विराजते थे। श्रीराधाबाईजी ने गौसेवा और भण्डार–सेवा १२ वर्षों तक की। ये चिकसौली ग्राम के विहार कुण्ड पर विराजती थीं। श्रीअनन्तदासजी, श्रीसनकादिकदासजी, श्रीदामोदरदासजी, श्रीनागरीदासजी, श्रीमनोहरदासजी प्रभृति शिष्य ४२ शिष्यों में हैं।

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः। कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥

(श्रीभागवतजी १२/३/५१)

यद्यपि यह कलियुग दोषों का खजाना है किन्तु फिर भी इसमें एक बहुत बड़ा गुण है कि इस युग में केवल भगवान् श्रीकृष्ण का संकीर्तन करने मात्र से ही सारी आसक्तियाँ छूट जाती हैं और भगवान् की प्राप्ति हो जाती है। अतः कलियुग के दोषों से घबराओ नहीं।

श्रीरणछोड़दासजी के कृपापात्र 'किशोरीदासजी'

ग्रन्थ 'गह्वर-प्रदीप' से संकलित

किसी भी स्थान की शोभा पूर्ववत् तभी बनी रह सकती है, जब पीछे से योग्य शिष्य सँभालने वाले हों। श्रीसिद्धेश्वरजीमहाराज (बाबा रणछोड़दासजी) के निकुंजवास के पश्चात् भण्डारी श्रीकिशोरीदासजी महाराज ने संवत् १९७२ में गुरुद्वारे का दायित्वपूर्ण कार्य भार अपने हाथ में लिया। तभी से आपने अपने सतत् सेवा भाव और साधु परायणता से स्थान की कीर्ति को अधिकाधिक समुन्नत किया।

किशोरीदासजीमहाराज का जन्म काँगड़ा जिले में नन्दपुर ग्राम के प्रतिष्ठित व्यासकुल में हुआ था। आपके पिता श्रीगोविन्दलालजी तीन भाई थे, जिनके तीन गाँव की जमीदारी थी, पर तीनों के कोई सन्तान नहीं थी। एक महात्मा की सेवा और भक्तिभाव का यह फल हुआ कि संवत् १९२१ में श्रीगोविन्दलालजी के घर श्रीबन्नू माता की पवित्र कूँख से उन्हीं सेवित महात्मा ने जन्म लिया। सारे परिवार में आनन्द और मंगल छा गया। सुन्दर बालक को गोद में खिलाकर सभी आनन्दित होने लगे। एक समय इनके पिता रासलीला दिखाने को ले गये। वहाँ रासबिहारी लीलाधारी भगवान् की गोद में खेलकर पूर्व जन्म का स्मरण हुआ। १३ वर्ष की अवस्था तक ये खेल-कूद व पठन-पाठन में लगे रहे। एक दिन अचानक घर छोड़कर ये चल दिए तथा अमृतसर, लाहौर, मुल्तान, डेराह, स्माइल खाँ, सिन्ध, हैदराबाद में विचरते हुए रहीमगिरि पर पहुँचे और वहाँ साल भर तक तपश्चर्या करते रहे। वहीँ साधु वेष में श्रीनारद भगवान् ने इन्हें दर्शन देकर श्रीगोपाल मन्त्र का उपदेश दिया और ब्रजभूमि में सद्गुरु मिलने का आश्वासन दिया। वहाँ से घूमते-फिरते एक सप्ताह भावलपुर रहकर शिकारपुर पहुँचे, जहाँ के रईस ने इनको गोद लेने की इच्छा प्रकट की। ये घर से ३ गाँवों की जमींदारी छोड़कर विरक्त हुए थे, यहाँ और भी अधिक गाँवों की जमींदारी का लोभ आपके मन को विचलित न कर सका। वहाँ से आप चल दिए और सैकड़ों कोस की यात्रा करते हुए नारायण सरोवर पहुँचे। वहाँ कुछ दिन विश्राम करके नालिया कुठारा ग्राम में आकर बीमार पड़ गये, तब एक स्त्री ने माता के समान इनकी सेवा की। स्वस्थ होने पर ग्रामवासियों को एक मास तक आपने श्रीमद्भागवत की कथा सुनायी। वहाँ से चलने लगे तो गाँव वालों ने पीछा न छोड़ा, पर एक दिन बिना कहे ही अचानक आप वहाँ से चल दिए और श्रीद्वारकाजी पहुँचकर वहाँ दो मास तक निवास किया। छः महीने ये गिरिनार में रहे, वहाँ से जोधपुर राज्य के बाड़मेर ग्राम में आकर कुछ दिन विश्राम किया। उन दिनों वहाँ के लोग वर्षा के अभाव से अकाल पीड़ित हो रहे थे। आपने एक ब्राह्मण से शंकर भगवान् की आराधना कराकर सहस्रधारा का प्रयोग कराया। उस गाँव में अधिकांश जैन धर्मावलम्बी बसते थे। जब उन्होंने देखा कि आकाश में बादल छाकर घनघोर वर्षा आरम्भ हो गयी है तो गाँव के सभी लोग आपके श्रद्धालु भक्त हो गये, परन्तु आप उधर अधिक न ठहरे, ब्रजभूमि का प्रेम इनको खींचने लगा और इसलिए वहाँ से चल दिए।

मथुरा, गिरिराज एवं वृन्दावन के कालीदह पर कुछ दिन निवास करके ये श्रीप्रियाजी के धाम श्रीबरसाना में आये। वहाँ एक निम्ब वृक्ष के नीचे आसन लगाकर बैठ गये। दोपहर के २ बजे आप श्रीजी के दर्शन करने जा रहे थे, उस समय आपको श्रीप्रियाजी के महल की ओर से आती हुई नौ-दस वर्ष की बालिका दिखाई दी, जिसने कहा – 'ओ बाबाजी ! अब तो दर्शन हो चुके, शाम को ४ बजे मैं बुलाने आऊँ तब आना।' जब ४ बज गये और कोई बुलाने नहीं आया, तब आप स्वयं गये तथा समझ गये कि यह सब लीला श्रीलाड़लीजी की ही है। वहीं पर आपको श्रीसिद्धेश्वरजीमहाराज के दर्शन हुए। उधर अपनी हार्दिक श्रद्धा और भक्ति का झुकाव देखकर इन्होंने अपने सद्गुरु को पहचान लिया। श्रीसिद्धेश्वरजीमहाराज ने भी पूर्व परिचित की भाँति योग्य शिष्य पाकर इन्हें गुरुदीक्षा दी और वैष्णवधर्म के अनेक

रहस्यों का सदुपदेश दिया, जिससे पूर्ण शान्ति पाकर ये भक्तिभाव से गुरु–सेवा में तल्लीन हो गये। दो वर्ष तक ये घाटा के बगीचे से श्रीलाड़लीजी की सेवा–पूजा के लिए फूल लाते रहे।

पूज्य गुरुदेव ने सेवा का समस्त भार आप पर छोड़ दिया था। इन्होंने तन–मन से श्रीजी के भण्डार की सेवा की। संवत् १९५७ से संवत् १९८२ तक २५ वर्षों के लम्बे सेवाकाल में लगभग १ लाख रुपये श्रीजी के भण्डार में आपके द्वारा खर्च हुए। इसके बाद आप भण्डार का कार्य छोड़कर गह्वरवन में कुटी में निवास करने लगे। यही पर आपने श्रीगोपालजी का मन्दिर, गौशाला और श्रीगुरुमहाराज का समाधि कुञ्ज निर्मित कराया है।

<u>गुरु–सेवा</u>

पूर्व जन्म के अच्छे संस्कारों से ही माता, पिता और गुरुजनों की सेवा का शुभ अवसर प्राप्त होता है। यह सौभाग्य की ही बात थी, जो २०–२५ वर्ष की अवस्था से आपको गुरुसेवा का अवसर मिला और संवत् १९७२ तक तीस वर्ष पर्यन्त आपने तन–मन से श्रीगुरुमहाराज की सेवा की। बिना गुरु आज्ञा के आप कोई काम नहीं करते थे। यहाँ तक कि श्रीजी के दर्शन को भी आज्ञा लेकर ही जाते थे। इन्हीं सब बातों से आप श्रीगुरुमहाराज के परम प्रिय विश्वासपात्र शिष्यों में थे। बाह्य और आन्तरिक सभी भेदभावों से आपको परिचित करा दिया गया था। धर्म सम्बन्धी विषय और सेवा सम्बन्धी समस्त कार्य श्रीगुरु महाराज ने आप पर ही छोड़ दिया था। गुरु–सेवा का ही यह प्रताप था जो आपको तपोबल और सिद्धि प्राप्त हुई।

<u>तपोबल–प्रभाव</u>

इनका तपोबल भक्तों के लिए लाभप्रद था। ऐसा कहा जाता है कि एक दिन स्वयं इनको करहला ग्राम में अनुष्ठान करते हुए श्रीलाड़लीजी का साक्षात्कार हुआ क्योंकि इनका तपोबल और भक्तिभाव जो कुछ भी था, श्रीलाड़लीजी की सेवा के लिए ही था।

समथर वाले राजाजी को आपके आशीर्वाद से पुत्र जन्म का लाभ हुआ, जिन्होंने श्रीलाड़ली के महल में चाँदी के पत्रों के किवाड़ अर्पित किये। फतेहपुर सीकरी के बंसीधर भक्त ने मनोरथ सिद्धि पर श्रीजी के लिए चाँदी पत्र का बहुत बड़ा हिंडोल बनवाया।

एकबार गह्वरवन में रासलीला हो रही थी और आप ज्वराक्रान्त होने से सेवा में न पहुँच सके। श्रीरासबिहारी ने आपको याद किया। श्रीगुरुमहाराज की आज्ञा पाकर ये रुग्ण दशा में ही आये और दण्डवत की। कहा जाता है कि इन्होंने स्वस्थचित्त होकर रासलीला देखी और ज्वर जाता रहा।

एकबार श्रीवृन्दावन की दतिया वाली कुञ्ज में रास हो रहा था, उस समय आपने स्वरूपों को बीड़ी भोग धारण कराने की इच्छा प्रकट की, परन्तु मण्डली के स्वामी ने ऐसा नहीं करने दिया। आपको यह बात अखरी और इसलिए प्रसाद नहीं पाया, जब स्वयं रासबिहारी ने बीड़ी माँगी, तब गुरुमहाराज की आज्ञा पाकर आपने बीड़ी प्रसादी अर्पित की और तभी आपने प्रसाद पाया।

श्रीबद्रिकाश्रम की यात्रा के समय आप भक्तिभाव में रत हुए पहाड़ पर चले जा रहे थे, वहाँ दो पुरुष मिले, जिन्होंने अपना भेद तो प्रकट नहीं किया पर उनकी आकृति और सुमधुर वचनों से यह जान लिया गया कि साक्षात् नर–नारायण के दर्शन हुए हैं। थोड़ी देर के पश्चात् वे लुप्त हो गये।

गंगोत्री स्नान के लिए जब आप पधारे तब वहाँ भीड़ के कारण स्नान कठिन हो गया था। ये एकान्त स्थान में आसन लगाकर ध्यानमग्न हो गये। कहा जाता है कि श्रीभगवती भागीरथी ने वहीं प्रवाहित होकर इन्हें स्नान कराया। इसी प्रकार वसुधारा का प्रवाह, जहाँ आप श्रीगोपालजी की सेवा में ध्यानमग्न थे, निजमार्ग छोड़कर प्रवाहित हुआ।

<u>स्नेह व दया भाव</u>

गुजरात देश निवासी साधु रामरक्षादासजी श्रीरामानुज सम्प्रदाय के शिष्य थे। वे गह्वरवन में आये और श्रीकिशोरीदासजीमहाराज के दर्शन करके उनसे

दीक्षा लेने को आतुर हुए। उन्हें समझाया गया तो वह निराश होकर कुटी की परिक्रमा में बैठकर रोने लगे और कहने लगे – 'जो श्रद्धा आपके पुनीत चरणों में हो चुकी, वह तो हट नहीं सकती। अब आपके अपना लेने से ही मेरा कल्याण है।' इनके श्रद्धा भावों को देखकर आपने इनको शिष्य बना लिया, जो अब ब्रजभूमि में विचरते रहते हैं।

सिरसा ग्राम की ज्ञानी नामक जाटनी को आप पर इतनी श्रद्धा हो गयी कि घर में किसी के रुग्ण होने पर तथा गाय–भैंसों के दूध न देने पर आपका चरणोदक ले जाती और उसके सेवन को रामबाण औषधि समझती और लाभान्वित होती।

जीसुख गुसाई को एक बार सर्प ने डस लिया, आपको दया आई और मोर पंखी नाम की एक जड़ी पानी में पीसकर सर्प दंश पर लगा दी, श्रद्धालु भक्त को तुरन्त इसी से लाभ हो गया।

आकृति और स्वभाव

ब्रजभूमि के तपोमूर्ति, वयोवृद्ध, सिद्धि प्राप्त साधुओं में श्रीकिशोरीदासजीमहाराज की पूर्ण ख्याति है। आप बड़े निरभिमानी और शान्त प्रकृति के महात्मा थे। क्रोध पर आपने सर्वथा विजय प्राप्त कर ली थी। आपका शरीर सुदृढ़ और सुडौल था, श्याम वर्ण, मोटी आँखें तथा चेहरे की आकृति गोल थी। गले में तुलसी की कंठी और वेश–भूषा साधारण थी। चेहरे की मृदु मुस्कान और चित्त की प्रफुल्लता शरणागत दुःखीजन के हृदय को आनन्दित कर देती थी। दयालुता और कोमलता के भाव, जो साधुजन की स्वाभाविक साधना है, दयापात्र कभी उससे वंचित नहीं रहते हैं। आजन्म ब्रह्मचारी रहने से वृद्धावस्था में भी आपका शरीर स्वस्थ, नीरोग और सुदृढ़ था। भारत के अनेक नगरों में भ्रमण करने, हिमगिरि गुहा और कन्दराओं में घूमने एवं सदा सेवाभाव में रत रहने से किसी प्रकार के कष्ट सहने की परवाह वे वृद्धावस्था में भी नहीं करते थे। मिताहार–विहार से आलस्य रहित होकर अपना अधिकांश समय भगवद्ध्यान, साधु–सेवा और धर्म–प्रचार में लगाते थे। सैकड़ों नवयुवकों ने आपके दयालु स्वभाव और मनहरण–उपदेश से मदिरा–मांसादि अनेक दुर्व्यसनों को छोड़कर सद्गुणों को ग्रहण किया। खान–पान और आचार–विचार ठीक रखने की आप पहली शिक्षा देते थे। आपके अमृतमय वचनों में ही वह गुण था कि आचार भ्रष्ट और भक्ष्याभक्ष्य भोजी भी एकबार आपका सत्संग और सदुपदेश पाकर सदा के लिए सुधर जाता था। आपके चेहरे की आकृति में ही दुर्गुण–दुर्व्यसनों को निकाल देने और सद्गुण भर देने की शक्ति थी।

सहनशीलता

एक बार आप नाथद्वारा दर्शन के लिए पधारे, साथ में डॉक्टर गंगाबख्शजी भी थे। दर्शन के समय मन्दिर में अधिक भीड़ होने से प्रबन्धकों ने बड़ी रोकथाम लगा रखी थी। झापटियों के कोड़ों से डरकर डॉक्टर गंगाबख्श तो उस समय लौट आये, पर आपने कोड़ों की कोई परवाह नहीं की। इतने में ही एक सज्जन इनके स्वरूप और सहनशीलता को देखकर इन्हें भीतर ले गये और आपने बड़े आनन्द से श्रीनाथजी के दर्शन किये। झापटिये ने यहाँ भी इनका पीछा नहीं छोड़ा, पर आप शान्तचित्त होकर दर्शन करते रहे। मन्दिर के मुखिया ने एक शील स्वभाव आनन्दमूर्ति महात्मा के साथ झापटिये का दुर्व्यवहार देखकर उसे बाहर निकलवा दिया और श्रीमहाराज से अपरिचित होने पर भी क्षमा माँगी और पीछे आपका पूर्ण परिचय मिलने पर गुसाईंजीमहाराज ने दो थाल महाप्रसाद के धर्मशाला में पहुँचाये और आपके आने–जाने के लिए मोटर का प्रबन्ध कर दिया। वहाँ से लौटते समय मोटर द्वारा रेल पर पहुँचाकर महाप्रसाद की दो टोकरियाँ भी साथ में और भेजी।

एक बार पूर्णिमा के अवसर पर एक रामानन्दी साधु आपके स्थान पर आये और दो–तीन दिन निवास करके निन्दा सूचक बातें करते रहे। आपने उनकी बुरी आलोचनाओं पर ध्यान नहीं दिया, अपितु आदर–सत्कार पूर्ववत करते रहे। उनके चले जाने के पश्चात् आपके शिष्यों में से एक ने जो वहाँ उपस्थित थे, उसने प्रार्थना की कि महाराज ! वह साधु तो दिन भर निन्दा

करता था, आपने जानबूझकर भी उसकी इतनी आवभगत क्यों की ? आपने हँसकर उत्तर दिया कि हमने एक साधु की सेवा करके अपना कर्तव्य पालन किया है, साधुओं की लीला जानना कठिन है।

चमत्कार

यद्यपि श्रीमहाराज किसी प्रकार का चमत्कार दिखाने और अपनी प्रशंसा से कोसों दूर भागते थे, पर भक्त और शिष्यजनों को समय–समय पर ऐसी बातों का परिचय हो ही जाता है। प्रसंगवश कुछ वर्णन तो पहले ही हो चुका है, एक–दो बातें यहाँ भी प्रकट की जाती हैं –

अलवर निवासी ला. खैरातीलाल ने श्रीजी के महल की सीढ़ियों के पास श्रीनागाजी की बैठक पर एक मन्दिर बनवाया । उस मन्दिर की प्रतिष्ठा के अवसर पर ब्रजवासियों को प्रतिघर एक व्यक्ति का न्यौता दिया। उस समय तो ब्रजवासियों ने कोई आक्षेप नहीं उठाया, परन्तु भोजन के समय यह कहकर नट गये कि सब घर वालों को जिमाओ तो आयेंगे। भोजन इतना बना नहीं था जो सबको पर्याप्त होता। अब तो ला. खैरातीलाल असमंजस में पड़ गये। जब श्रीमहाराज को यह ज्ञात हुआ तो मुस्कुराकर कहने लगे – 'कोई चिन्ता की बात नहीं है।' आपने गह्वरकुटी से पधारकर भोजन भण्डार के बाहर एक सफेद चादर लगवा दी और ब्रजवासियों को उनके सम्बन्धियों सहित भोजन के लिए निमन्त्रण भेज दिया । समस्त साधु–संतों और ब्रजवासियों ने आनन्दपूर्वक प्रसाद पा लिया परन्तु भण्डार में कोई कमी नहीं आई। जहाँ कहीं प्रसाद भेजना था, वहाँ भी भेज दिया गया। इस चमत्कार को देखकर सभी विस्मित हो गये। आपके शिष्य वर्ग ने आपके आशीर्वाद से बहुत लाभ उठाया। दामोदरजी रासधारी निःसंतान होने से बड़े दुःखी रहते थे, बाबू कान्तिचन्द्रजी की सन्तान जीवित नहीं रहती थी, डॉक्टर गंगाबख्शजी असाध्य रोगी हो गये थे और मुन्शी विष्णुलाल विक्षिप्त हो गये थे। इन भक्तजनों को श्रीमहाराज के आशीर्वाद से पूर्ण सन्तति लाभ और आरोग्यता प्राप्त हुई।

पंडित नन्दकिशोरजी डाक विभाग से त्यागपत्र देकर बाल–बच्चों सहित एक बार आपकी सेवा में उपस्थित हुए और प्रार्थना की कि परिवर्तन के बदले त्यागपत्र भूल से लिखा गया, आप ऐसी कृपा करें कि जिससे वह स्वीकार न हो। एक सप्ताह बाद ही उन्हें तार द्वारा भरतपुर के तबादले की सूचना मिली, जिसकी प्रसन्नता में पंडित नन्दकिशोर भेंट लेकर श्रीमहाराज की सेवा में उपस्थित हुए। आपने वह भेंट स्वीकार न करते हुए कहा कि हम घूस थोड़े ही लेते हैं।

जिन दिनों अलवर में नगर निर्माण के क्रम में सड़कें निकाली जा रही थीं, पंडित नन्दकिशोरजी और उनके भ्राता पंडित गंगाबख्शजी का मकान सड़क में आ गया और उस पर झंडी लग गयी। उस समय श्रीमहाराज, डॉक्टर गंगाबख्शजी के सुपुत्र लाड़लीशरण के यज्ञोपवीत संस्कार में पधारे थे। पंडित गंगाबख्शजी श्रीमहाराज को अपने घर ले गये और मकान सड़क में न आने की इच्छा प्रकट की, तब आपने सान्त्वना दी कि तुम्हारा मकान नहीं टूटेगा और कुछ टूटे हुए भाग का पूरा मुआवजा मिलेगा। अन्त में ऐसा ही हुआ और उस सड़क का निकलना ही बन्द हो गया।

इनके शिष्य बा. कन्हैया लाल बरसाना में किसी साधु के दिए हुए मनोरथ सिद्धि के ताबीज को बाँध लेने से ज्वर पीड़ित हो गये, चिन्ताजनक दशा को देखकर इनके भाई मास्टर प्रसादी लालजी ने यह समाचार श्रीमहाराज जी से कहा। आपने थोड़ा चरणामृत भेजा और धैर्य धारण करने का उपदेश दिया। रोगी ने अधिक व्याकुल होकर श्रीराधा–राधिकादि स्तोत्र पाठ आरम्भ किया। कहा जाता है कि गुरुकृपा से उस विह्वल दशा में युगल सरकार ने दर्शन दिए और ऐसा ज्ञात हुआ कि पहाड़ी के रास्ते गह्वरवन को ले जा रहे हैं, सिद्धि कुटी के नीचे वाले रासमण्डल पर रासलीला हो रही है। वहीं श्रीभण्डारीजी के शरीर में श्रीसिद्धेश्वरजी महाराज को लय होते देखा। उस ताबीज को तोड़ फेंकने की आज्ञा हुई, जिसके पालन से बिना किसी औषधि के केवल चरणामृत के पान से आराम हो गया।

निष्कामता में सच्ची संतुष्टि

बाबाश्री के 'श्रीमद्भगवद्गीता–सत्संग' (२/२/२०१२) से संकलित

श्लोक – ५३

...(शेष व्याख्या) अन्य बुद्धियों की शरण में जाने से जीव कृपण हो जाता है । **'दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनन्जय'** ये चार–पाँच श्लोक समझने में कठिन हैं और यही गीता का सार है । गीता 'निष्काम कर्मयोग' सिखाती है – ऐसा कर्म जिसमें कामना नहीं है तो वह योग बन जाता है । जरा–सी भी कामना आयेगी तो वह योग को बिगाड़ देगी । इसलिए कहा गया कि 'दूरेण ह्यवरं कर्म' – सकाम कर्म जितने भी हैं, नीच हैं । भगवान् कहते हैं कि बुद्धि की शरण में जाओ, कौन–सी बुद्धि, जो फलों को ग्रहण नहीं करती, जो फलों का त्याग करती है । फलों का त्याग क्यों नहीं होता है ? क्योंकि कामनाएँ मनुष्य को फल की ओर ले जाती हैं । वह सोचता है कि लड्डू खाने में सुख मिलेगा तो उसकी बुद्धि लड्डू की ओर जाएगी इसलिए भगवान् ने कहा कि पहले बुद्धि की शरण में जाओ । बुद्धि कैसी होनी चाहिए – जो सुकृत–दुष्कृत दोनों को छोड़ देती है, तब योग होगा । सुकृत अर्थात् अच्छे काम करने से धन मिलेगा, भोग मिलेगा । इसलिए भगवान् ने कहा कि योग के लिए सब कर्म करो । अच्छी बुद्धि किसके पास है । किस बुद्धि की शरण में जाएँ, जो बुद्धि कर्मज फल को छोड़ देती है । कर्मज फल क्या है – सुख है, दुःख है । जो बुद्धि इनको छोड़ देती है । सुख–दुःख को छोड़ना मोह रूपी कलिल को पार कर जाना है । मनुष्य इनको नहीं छोड़ पाता है, कर्मज फलों को छोड़ना चाहिए, जो इन्हें छोड़ देता है, वही मनीषी है और वही जन्म–बन्ध से छूट जायेगा तथा अनामय पद को प्राप्त करेगा । भगवान् ने बताया कि कर्मजफल के त्याग का मतलब है 'भोग–ऐश्वर्य' को छोड़ना । भोग व ऐश्वर्य में जो लोग आसक्त हैं, उनकी बुद्धि भगवान् में नहीं लगेगी; यह कर्मज फल होता है । यह हर आदमी के सामने रोज आता है । घर में भी तुमने कहा कि कढ़ी बननी चाहिए, नहीं बनी तो नाराज हो गये और कहने लगे – अरे, हमने तो कढ़ी बनाने को कहा था, क्यों नहीं बनाई ?

कर्मजफल के त्याग में मनुष्य को अपनी इच्छा समाप्त कर देनी चाहिए क्योंकि फल के प्रति इच्छा होना, यही मोह है । इसलिए बुद्धि की शरण में हम कैसे जाएँ ? अर्जुन ने प्रश्न किया कि यदि वेद पढ़ने से भी बुद्धि चंचल हो जाती है तो क्या किया जाए ? वेद पढ़ने से भी बुद्धि चंचल हो जाती है, ऐसा भगवान् ने इसलिए कहा कि वेदों में वर्णन आता है कि यज्ञ करने से स्वर्ग मिलेगा, धन मिलेगा, राज्य मिलेगा । ऐसा पढ़कर इनकी कामनाओं के वशीभूत होकर यदि मनुष्य यज्ञ करने लगेगा तो गड़बड़ हो जायेगा; ये सब नीच कर्म हैं । बुद्धियोग के अतिरिक्त जितने भी संसार के काम हैं, सब नीच हैं । 'दूरेण' माने बहुत दूर से नीच हैं, बुद्धियोग व समत्वयोग से । इसलिए भगवान् ने अर्जुन से कहा कि पहले बुद्धि की शरण में जा नहीं तो अत्यंत नीच बनेगा । **'कृपणाः फल हेतवः' –** फल की कोई भी इच्छा आती है, वह आदमी को नीच बना देती है, अत्यंत नीच बना देती है । बुद्धियोग वाला ही सुकृत–दुष्कृत को छोड़ता है । हर समय,२४ घंटे इसको छोड़ना पड़ता है, उठते–बैठते सदा । अपने मन की इच्छा के खिलाफ जाना पड़ता है । इसलिए कर्मजफल को छोड़ना पड़ता है । अपना सुख, अपना दुःख, सब खत्म करना पड़ता है । जो आदमी कर्मजफल को छोड़ता है, वही बुद्धिमान है, नहीं तो मूर्ख है । बुद्धियुक्त वही है जो कर्मजफल को छोड़ता है, यह भगवान् ने स्पष्ट कह दिया, जो कर्मजफल को नहीं छोड़ता, वह मूर्ख है । मनीषी वही है जो कर्मजफल को छोड़ देता है, तभी वह जन्म–बंधन से छूट सकता है किन्तु कर्मजफल को छोड़ने में मोह का कीचड़ रोकता है । अतः अर्जुन ने भगवान् से पूछा कि बुद्धि कैसे निश्चल हो क्योंकि उसके पहले योग प्राप्त होता ही नहीं है । लोग साधु बनकर भी भोग, लड्डू–पेड़ा और धन–सम्पत्ति के लिए लालायित रहते हैं । निर्वेद तो है नहीं, ऐसे साधु

बनने से क्या फायदा रहा ? इसलिए मोह के कलिल में घूम रहे हैं, मोह के कीचड़ में फँसे हैं और ऊपरी वेष से साधु बन गये हैं। अतः अर्जुन ने पूछा कि आखिर बुद्धि स्थिर कैसे हो, भगवान् में अचल बुद्धि कैसे लगेगी ?

श्लोक – ५४

अर्जुन उवाच

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥

अर्जुन बोले – समाधि अर्थात् ईश्वर में स्थित होकर के जिसकी बुद्धि स्थिर हो गयी है, उसकी क्या भाषा और क्या लक्षण है ? स्थिर बुद्धि वाला कैसे व्यवहार करता है, कैसे बोलता है, कैसे बैठता है, कैसे चलता है अर्थात् उसकी क्रियाएँ कैसी होती हैं, जिससे उसको स्थितिप्रज्ञ मान लिया जाए ?

श्लोक – ५५

श्रीभगवानुवाच

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥

सभी कामनाओं को यदि छोड़ दिया जाए तो प्रश्न उठता है कि कामनाएँ कहाँ रहती हैं ? तब भगवान् बोले कि कामनायें मन में रहती हैं। बहुवचन में कहा गया कि कामनाएँ बहुत–सी हैं। यदि एक–दो हों तो उनको समाप्त किया जा सकता है लेकिन कामनाएँ बहुत–सी हैं – खाने–पीने की कामना, ओढ़ने–पहनने की कामना; ये कामनाएँ मन में रहती हैं और जब इनको छोड़ दिया जाता है तो मनुष्य अपने भीतर स्वयं संतुष्ट हो जाता है और स्थितप्रज्ञ बन जाता है।

इस तरह से कामना ही एक ऐसी चीज है जो मनुष्य की बुद्धि को चंचल करती है और कामना चली गई तो मनुष्य स्थितप्रज्ञ बन गया। जब कामना नहीं है तो उसकी पहचान क्या है ? वह सदा संतुष्ट रहता है। रामचरितमानस में कहा गया है –

बिनु संतोष न काम नसाहीं।
काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं ॥

बिना सन्तोष के काम नष्ट नहीं होता है। यह चौपाई – बिनु सन्तोष न काम नसाहीं, आत्मन्येवात्मना तुष्टः का अनुवाद है। जब तक सन्तोष नहीं है, काम नष्ट नहीं होगा और जब तक काम है तब तक आत्मलाभ का अक्षय सुख नहीं मिलेगा। चाहे साधु बन जाओ, चाहे सन्यासी बन जाओ, कामना नचाती रहेगी। आत्मतुष्टि ही सन्तोष है। संतोषी आदमी कभी भी कोई कामना नहीं करेगा। उसके सामने स्वर्ग के सुख आ जायें, लड्डू–पेड़ा ही नहीं, अमृत फल भी आ जाये तब भी वह उसकी कामना नहीं करेगा। अच्छा रूप आ जाए, उर्वशी आ जाये लेकिन वह उसको देखने की कामना नहीं करेगा। अर्जुन स्वर्ग गए तो वहाँ इन्द्र की आज्ञा से उर्वशी अर्जुन के पास गयी। अर्जुन ने माता जी कहकर उसका सम्मान किया। उर्वशी बोली – 'मैं तुम्हें पुत्र बनाने नहीं आई हूँ, मैं तो तुम्हें भोग से संतुष्टि देने आई हूँ।' यह सुनकर अर्जुन ने कान बंद कर लिए और कहा – 'राम ! राम !! कहीं माता और बेटे का भोग होता है।' वहाँ अर्जुन का उर्वशी से विवाद हुआ। अर्जुन बोले कि तुम मेरी माँ हो। उर्वशी बोली – 'मैं कैसे माँ हूँ ?' अर्जुन बोले – 'इसलिए हो क्योंकि हमारे पूर्वजों ने तुमको भोगा है। नहुष हमारे पूर्वज थे। एक बार वह स्वर्ग के इंद्र बने।' उर्वशी बोली कि हम अप्सराएँ तो स्वर्ग की वेश्यायें हैं, यहाँ कोई भी आएगा, वह हमको भोगेगा ही। इसलिए हमारा किसी के साथ पुत्र और माँ का सम्बन्ध ही नहीं होता है।

अर्जुन ने कहा – 'नहीं, तुम्हारा दृष्टिकोण दूसरा है, मेरा दृष्टिकोण दूसरा है। भले ही नहुष को अपने पुण्यबल से स्वर्ग के इन्द्र बनने और तुम्हें भोगने का अधिकार मिला लेकिन वह हमारे पितामहों के भी पिता थे, अतः तुम सदा हमारी माँ ही रहोगी।' उर्वशी बोली – 'तू नहीं मानेगा।' अर्जुन बोले – 'तुम तो मेरी माँ हो और सदा माँ ही रहोगी।' उर्वशी ने क्रोध में भरकर अर्जुन को शाप दे दिया – 'जा, तू बहुत माँ–माँ कर रहा है, सदाचारी बन रहा है, अतः नपुंसक बन जा। तेरी पुरुषत्त्व की शक्ति चली जाए।' अर्जुन ने कहा – 'तुम भले ही मुझे शाप देकर भस्म कर दो किन्तु माँ के अतिरिक्त मेरा तुमसे और कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। मेरे अन्दर कामना नहीं पैदा हो सकती। तुम त्रिलोक सुन्दरी हो और रात्रि को एकान्त में मेरे पास श्रृंगार करके आई हो लेकिन मैं अपने रास्ते से नहीं हट सकता।' उर्वशी के शाप से अर्जुन नपुंसक बन गए किन्तु वह घबराए नहीं क्योंकि वह स्थितप्रज्ञ थे। आपत्ति आती है परन्तु मनुष्य को अपने रास्ते से गिरना नहीं चाहिए।

‘श्री राधागोविन्ददेव जी मन्दिर’
जयपुर में बाल साध्वी मधुवनीजी
श्रीमद्भागवत् कथा कहते हुए

RNI REFERENCE NO. 1313397- REGISTRATION NO. UP BIL-2017/72945-TITLE CODE UP BIL-04953 POSTAL REGD.NO. 093/2021-2023

श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान के लिए प्रकाशक/मुद्रक एवं संपादक राधाकांत शास्त्री द्वारा गुप्ता ओफ़्सेट प्रिंटर्स A- 125/1 , wazipur industriyal area, new delhi- 52 से मुद्रित एवं मान मन्दिर सेवा संस्थान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.) से प्रकाशित